आश्रम ग्रन्थमाला नं० ८

॥ ओ३म् ॥

आनन्द संग्रह

जिसमें

उपनिषदों और सत्य शास्त्रों के गूढ़ तत्वों की

सरल व्याख्या ।

पूज्यपाद स्वामी

सर्वदानन्द जी महाराज

ने

अपने (नए पुराने) धर्म्म उपदेशों में की है

प्रकाशक—

राजपाल—अध्यक्ष

आर्य्य-पुस्तकालय, सरस्वती-आश्रम,

अनारकली, लाहौर ।

सम्वत् १९८४ वि०] सन् १९२८ ई० [दयानन्दाब्द १०२

तृतीयावृत्ति २०००] [मूल्य १)

"हिन्दी प्रैस" मैक्लेगन रोड, लाहौर ।

भूमिका ।

इस पुस्तक का यह तीसरा-संस्करण पाठकों की भेंट किया जाता है। जितनी श्रद्धा और भक्ति से इस पुस्तक का पाठ किया है बहुत थोड़ी दूसरी पुस्तकों का किया जाता होगा कारण यह कि इसमें उपनिषदों और सत्यशास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को बड़े सरल और सुगम शब्दों में खोला गया है। पुस्तक का प्रत्येक उपदेश इतना आत्मिक आनन्द से पूर्ण है कि पाठकों पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष सभी के लिए यह पुस्तक लाभकारी है।

इस आवृत्ति में स्वामी जी महाराज के और कई उपदेश बढ़ा दिए गए हैं।

राजपाल

प्रकाशक

स्वामी जी का संक्षिप्त जीवन चरित ।

आदर्श संन्यासी ।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अपने समय के एक आदर्श संन्यासी हैं, त्याग का भाव जो एक सच्चे संन्यासी में होना चाहिए वह पूर्ण रूप से आप में विद्यमान है। आपकी न किसी से विशेष मित्रता न किसी से द्वेष। आपका जीवन इस बात की साक्षी देता है कि आपने राग और द्वेष को जीता हुआ है। कुटिलता और पालिसी उनसे कोसों दूर है। निर्भयता जो एक सच्चे संन्यासी का विशेष गुण शास्त्रों ने बतलाया है वह उनमें पाई जाती है। आर्य्यसमाज का प्रेम आपके रोम २ में रम रहा है। यद्यपि आयु के वृद्ध हैं परन्तु धार्मिक जोश के लिए आर्य्यसमाज का कोई नवयुवक उपदेशक भी उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। यदि आज बम्बई से उनके व्याख्यानों की रिपोर्ट आती है तो परसों पेशावर में गर्ज रहे हैं। उनकी रातें रेल के सफ़र में कटती और दिन उपदेशों में व्यतीत होते हैं। उन्हें कभी यह ख्याल नहीं आया कि अमुक जगह दूर है या अमुक जगह के सफ़र में कष्ट है। मान अपमान के भाव को भी आप ने जीत लिया है। छोटी से छोटी समाज के उत्सव पर जहां पचास या

सौ से अधिक श्रोताओं की उपस्थिति नहीं हो सकती, वे बराबर व्याख्यान देते जाते हैं। उनकी आवाज़ में इतनी गर्ज है कि दस पन्द्रह हज़ार के समूह में सब से अन्तिम पंक्ति में उपदेश सुनता हुआ एक पुरुष जिसको स्वामीजी का चेहरा न दिखाई देता हो नहीं कह सकता कि यह किसी वृद्ध की आवाज़ है। उनके व्याख्यान बहुत सारगर्भित मगर साथ ही अत्यन्त सरल होते हैं और प्रत्येक स्त्री पुरुष की समझ में आजाते हैं, चाहे वह किसी मत से सम्बन्ध रखती हो। आर्य्यसमाज में प्रवेश करने के बाद उनकी आयु का बहुत सा भाग संयुक्त प्रान्त में गुज़रा है और देर तक वही प्रान्त उनके कार्य का क्षेत्र रहा है क्योंकि आप समझते थे कि इस प्रान्त में काम की अधिक आवश्यकता है।

जीवन-चरित्र।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज बसीकलां ज़िला होश्यारपुर के रहने वाले हैं। उनका पहला नाम पण्डित चंदूलाल और उनके पिता का नाम पण्डित गंगाबिशन था। उनका जन्म एक ऐसे कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ जिसमें कि कई पीढ़ियों से हिकमत (वैद्यक) चली आई है। इसी कारण स्वामी जी भी हकीम थे। जब तक गृहस्थाश्रम में रहे पौराणिक मत के अनुयायी रहे। शिवजी की पूजा बड़ी भक्ति और श्रद्धा से किया

करते थे। बाग़ से स्वयं फूल लाते और एक २ करके शिवजी पर इस तरह चुनते कि सारा महादेव फूलों का दिखाई देता था। एक दिन जब दैनिक पूजा करने के लिए मन्दिर में गए तो क्या देखते हैं कि एक कुत्ता शिवजी की मूर्त्ति का जिसको कल स्वामी जी अलंकृत करके गए थे निरादर कर रहा है मन को बड़ा दुःख हुआ, और उसी समय से संकल्प विकल्प उठने लगे। उसी दिन से शिवपूजा से ऐसी श्रद्धा उठी कि फिर कभी उस मन्दिर को नहीं देखा। मानो विचारों के परिवर्तन में स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज को वैसी ही घटना पेश आई जैसी महर्षि दयानन्द को शिवरात्रि की रात पेश आई थी, वहां चूहा कारण बना था और यहां कुत्ता।

शिवमूर्त्ति का पूजन छूटा तो वेदान्त की ओर रुचि गई। हिकमत के कारण कुछ तो पहले ही अच्छी फ़ारसी जानते थे। अब फ़ारसी की अन्य पुस्तकें बोस्तां, मौलाना रूमी और बूअली क़लन्दर की मसनवियात आदि पढ़ने लगे, जिस से वेदान्त के अनुष्ठान करने का विचार उत्पन्न हुआ और इस विचार के उत्पन्न होते ही गृहस्थ को त्याग कर एक वेदान्ती संन्यासी से संन्यास ग्रहण कर लिया। उस समय स्वामी जी की आयु ३२ वर्ष के लगभग थी।

संन्यास लेने के पश्चात्।

संन्यास लेने के पश्चात् स्वामी जी तीर्थयात्रा को चले गए और चार वर्ष में समस्त तीर्थ कर डाले। अब वह वेदान्त में कुछ ऐसे मग्न हुए कि कई बार अपने आपको भी भूल जाया करते थे। एक बार अपने विचार में वह ऐसे लीन हुए कि तीन दिन तक समाधि लगी रही और कुछ खाया पीया नहीं। भूख को सहन करने की शक्ति तीर्थयात्रा के समय बहुत बढ़ गई थी। जब द्वारका से तीर्थ करके आए तो बड़े विकट जंगल में से गुज़रना पड़ा। जहां पर खाने पीने के लिए कुछ न मिलता था कदाचित् तीन चार दिन के पश्चात् सिद्धेश्वर के पास जाकर जौं का आटा खाने को मिला, जिसे स्वामी जी ने भूख निवृत्त करने के लिए खा लिया। तीर्थयात्रा के सफ़र में एक आदमी ने कहा कि स्वामी जी अगर लड्डू पेड़े खाने हैं तो उदयपुर के राज्य में जाओ, जहां साधु सन्तों का बहुत सत्कार होता है। मन में मौज आ गई और उसी ओर का रास्ता लिया, जाकर देखा तो वहां भी जौ के आटे के लड्डू मिले। कुछ दिनों तक वहां रहे फिर वहां से चल दिए और मथुरा के बाहर एक सेठ के मकान पर आकर ठहरे। स्वामीजी के साथ एक दो अवधूत महात्मा भी थे वह भी इनकी तरह मस्तमौला रहा

करते थे। एक अवधूत ने शहर में जाकर एक वैश्य को पकड़ लिया और कहा कि शहर के बाहर सन्त आए हैं उनका सत्कार करो, वैश्य ने बड़े प्रेम से सन्तों को भोजन कराया। अगले दिन भी यह तीनों साधु मिल कर उस वैश्य के घर जा डटे और कहा भूख लग रही है, सन्तों को भोजन कराओ आख़िर उसको मानना पड़ा और इनको अपनी बैठक में बिठला दिया; अब लगे सन्त रोटी की इन्तज़ार करने, तीन घंटे व्यतीत होगए कोई रोटी पूछने न आया। इन सन्त महात्माओं ने समझा कि आज तो वैश्य ने मख़ौल किया है, परन्तु थोड़ी देर के बाद एक आदमी ने आकर हाथ धुलाए और चला गया। फिर इन्तज़ार होने लगी और आपस में हंसी ठट्ठा करने लगे कि आज अच्छा सेठ मिला है इतने में बड़े सुन्दर थाल तौलियों से ढके हुए आए और सन्तों के सामने रख कर नौकर भाग गया। सन्त सोचने लगे कि यह क्या बात है भूख तो लगी ही थी तौलिया उठा कर देखा तो ज्ञात हुआ कि उनमें बहुत देर के सड़े भुने चने हैं जिनमें सुसरी पड़ रही है इस पर खूब हंसी उड़ा। इतन म वह वैश्य भा ऊपर अ य और कहा, महाराज! मेरे नौकर से अपराध हुआ मुझे क्षमा करें।

सत्यार्थप्रकाश का चमत्कार।

वेदान्त की मस्ती से ऐसी २ घटनाओं स पार होते हुए स्वामी जी चित्रकोट में आए, और यहां पर

कुछ मास ठहरे रहे, वहां सरदियों के दिनों में यमुना के किनारे नंगे पड़े रहा करते थे। इन्हीं दिनों में उनको एक बीमारी लग गई जो अब तक कभी २ उनको सताया करती है अर्थात् छाती और कटि का दर्द, यहां स्वामी जी बड़े तप का जीवन व्यतीत करते थे वह २४, २४ घंटे तक अपने विचारों में लीन रहा करते थे; भोजन का विचार आया और मिल गया तो खा लिया नहीं तो मस्ती में बैठे हैं। कुछ बीमार होगए इसकी सूचना गांव के एक ठाकुर को मिली जो स्वामी जी का सेवक था किन्तु धार्मिक विचारों में वह अपने इलाके में एक ही आर्य्यसमाजी था और स्वामी जी नवीन वेदान्ती थे। उसने आकर औषधि आदि द्वारा स्वामी जी की खूब सेवा टहल की, जब निरोग होगए तो मन में इच्छा हुई कि यहां से चलें। अपने सेवक को मिलने के लिए बुलाया, वह आते समय अपने साथ एक पुस्तक ले आया और पहले तो कुछ देर और ठहरने के लिए प्रबल इच्छा प्रकट की, किन्तु जब देखा कि नहीं मानते तो निवेदन किया कि महाराज! यदि मेरी सेवा से आप प्रसन्न हैं तो इस पुस्तक को ग्रहण कीजिए और यथासम्भव इस का आदि से अन्त तक अध्ययन करने की कृपा करें।

स्वामी जी ने पुस्तक को ले लिया जो कि एक बड़े सुन्दर रेशमी रूमाल में लपेटी थी और प्रतिज्ञा की कि वह इसको अवश्य पढ़ेंगे, यह कह कर वहां से

गोरखपुर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में विचार आया कि देखें तो सही यह कौनसी पुस्तक है जो हमारे भक्त ने इतने सुन्दर वस्त्र में लपेट कर दी है। खोल कर देखा तो वह आर्य्यभाषा में सत्यार्थप्रकाश की एक सुन्दर प्रति थी। स्वामी जी ने इस पुस्तक का नाम सुना हुआ था और वह इससे अत्यन्त घृणा करते थे तथा नवीन वेदान्ती होने के कारण वह इस पुस्तक को देखना तक पसन्द न करते थे। किन्तु अपने सेवक को वचन दे चुके थे, इसलिए और दूसरे यह भी मन में आया कि चलो देख तो लें इस में क्या लिखा है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़ना आरम्भ किया और प्रतिदिन निरन्तर पढ़ते रहे, जब तक इसको समाप्त न कर लिया। सत्यार्थप्रकाश का समाप्त करना था कि स्वामी जी कुछ और के और बन गए। अब नवीन वेदान्त का भ्रम दूर होगया। सत्यार्थप्रकाश के पाठ ने उनके जीवन में ऐसा चमत्कार दिखलाया कि जहां वह पहले पक्के वेदान्ती थे वहां अब पक्के आर्य्यसमाजी बन गए।

आर्य्यसमाज के कार्य्यक्षेत्र में।

अब मन में वैदिकधर्म्म के प्रचार की लग्न लग गई और झूठे मतमतान्तरों का खण्डन आरम्भ कर दिया। किन्तु पूरे तौर पर वैदिकधर्म्म प्रचार के लिए अधिक संस्कृत विद्या की आवश्यकता प्रतीत होने लगी इसलिए संस्कृत और वैदिक साहित्य का अध्ययन आरम्भ कर दिया। जहां भी

कोई योग्य पण्डित मिला, वहां ही उससे पढ़ लिया। पांच साल में सिद्धान्तकौमुदी, न्याय, सांख्यकारिका, वेदान्त पर शंकर भाष्य, खण्डनखाद्य, आदि पुस्तकें पढ़ लीं, इसके अनन्तर स्वामी जी के समस्त ग्रन्थों और उपनिषदों का पाठ कर लिया। इस प्रकार इस वृद्धावस्था में बड़ी मेहनत और परिश्रम से संस्कृत और वैदिक साहित्य में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और इस समय तक जब भी समय मिलता है अपनी योग्यता को बढ़ाने का यत्न करते हैं।

वैदिक धर्म प्रचार के लिए अपने में अच्छी योग्यता धारण करके स्वामी जी अब कई वर्षों से निरन्तर देश भर में वैदिकशिक्षा का प्रचार कर रहे हैं। दिन और रात उन्हें वैदिक धर्म प्रचार की लग्न लगी रहती है। बीमारी और तकलीफ़ के दिनों में भी उनकी आत्मा आर्यसमाजों में ही घूमती रहती है। आर्यसमाज में बहुत कम व्याख्यानदाता ऐसे होंगे जो दो अढ़ाई घण्टे तक निरन्तर बोल सकते हों। कई २ स्थानों पर स्वामी जी को एक दिन में तीन २ बार बोलना पड़ता है किन्तु उन्होंने कभी न नहीं की। विकट से विकट और छोटी से छोटी जगह में स्वामी जी जाने को तैयार रहते हैं यदि इन्हें जताया जाए कि वहां प्रचार की आवश्यकता है।

यह है स्वामी का संक्षिप्त शिक्षादायक जीवन चरित। आशा है कि आर्य्य भाई इससे बहुत सी शिक्षा ग्रहण करेंगे।

* ओ३म् *

आनन्द संग्रह

पहला भाग।

कल्याण के साधन

वैदिकधर्म के प्रचार से देश का उत्थान, आर्य जाति का संमान और मनुष्यमात्र का कल्याण हो सकता है यह महानुभाव ऋषि दयानन्द का पूर्ण विश्वास था।

यही कारण था कि ऋषि ने वड़े ही उत्साह से वेदों का प्रचार किया। उनका निश्चित सिद्धान्त था कि वैदिक सिद्धान्त जो सृष्टिक्रम के अनुकूल हैं वह प्रत्येक अवस्था में एक जैसे रहते हैं। और वही नियम संसार के बंधन और स्थिति का कारण हैं। उनको ही दूसरे अर्थों में ईश्वरीय नियम कह सकते हैं। मनुष्य समाज का उत्थान या पतन, वृद्धि या ह्रास इन्हीं के आधीन है। जो मनुष्य सोच समझ कर उनके अनुसार अपने को बनाता है वह आराम पाता है। जो उनके विपरीत चलता है वह दुःख उठाता और अपने गौरव को घटाता है। यही कारण है कि भारत अपनी असली अवस्था में नहीं है। यद्यपि यह वेदों को अपना धर्म पुस्तक मानता है मगर अपने अज्ञान से इससे लाभ उठाना

नहीं जानता । किसी के गुण को न जानना ही तो अज्ञान है, उसका मानना उसकी निन्दा के समान है । भील लोग जो जंगलों में रहते हैं जब कभी उनको मोती प्राप्त हो जाते हैं वह मोतियों को अपनी चीज़ तो मानते हैं मगर रत्तियों की लाली को देख कर उनके बदले मोतियों को दे डालते हैं । वे अज्ञानता के कारण मोतियों के मूल्य को नहीं जानते इसी कारण उनको मोतियों से कोई लाभ नहीं होता । ठीक इसी तरह भारतनिवासियों ने पुराणों के बदले (जो मनुष्यों के बनाए हुए हैं और अनेक प्रकार की मनघड़त कहानियों से भरे हुए हैं) ईश्वरीयज्ञान वेद को (जिसके आगे प्राचीन ऋषि, मुनि, संस्कृत के पूर्ण विद्वान् प्रतिष्ठा और नम्रता से अपने शिर को झुकाते थे) बेच दिया । फिर क्या था वैदिक संस्कार शनैः २ घटने और पौराणिक विचार चढ़ने लगे । और इस कदर बढ़ गए कि देश आर जाति प्रत्येक प्रकार के सन्देह और भ्रमों में फंस गई । समय २ पर भद्रपुरुषों ने जिनकी ज्ञानचक्षु प्राकृतिक नियमानुसार खुल गई इस बेहूदा मार्ग के बन्द करने और सीधा रास्ता खोलने के लिए संग्राम करनः अपना कर्तव्य समझा, उनको बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना और दुःख उठाना पड़ा । देश और जाति के लोग उनके शत्रु हो जाते रहे । कोई अपने काम को अधूरा छोड़ कर पृथक् होगया और कोई

अपमान को न सह कर और संमान से दब कर विरोधियों के आधीन होगया। देश और जाति की हालत में कोई भी भेद न प्रकट हुआ बल्कि आगे २ बिगाड़ और ख़राबी की ज़ंजीर दृढ़ ही होती गई।

कहां तक कहें वह कौनसी निबलता है जो इस देश में न आगई हो और वह कौनसा दोष है जिसकी ताकत इस देश और जाति पर न छा गई हो। यह प्राकृतिक सिद्धान्त है कि रोग की अवस्था में स्वस्थता के नियम छुप ही जाते हैं। और जब स्वास्थ्य प्रकट होता है तो रोग लोप होजाता है। नियमपूर्वक रहन सहन से मनुष्य स्वस्थ रहता है। इस प्रबन्ध के बिगड़ जाने से रोग का आगमन होता है। यदि स्वतन्त्रता स्वास्थ्य है तो बन्धन बीमारी है, देश और जाति की उन्नति स्वास्थ्य है तो ह्रास बीमारी है। बस, प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता, उन्नति, और स्वास्थ्य से स्वाभाविकतया प्रेम और बन्धन, पतन, और रोग से घृणा है। अतः प्रत्येक का कर्त्तव्य है कि प्रेम के सामान को बढ़ाने और घृणा के कारण को घटाने के लिए सर्वदा कटिबद्ध रहे। लेकिन इस रहस्य को समझना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं। इस समस्या को खोलने के लिए समय २ पर महात्मा पुरुष आते हैं जो अपनी शुद्ध बुद्धि द्वारा सर्व प्रकार के आराम को छोड़ मान व

अपमान व बन्धनों को तोड़ शुद्धभाव और साधुस्वभाव से संसार को हित का मार्ग दिखा और अहित के पथ से हटा कर अपना कर्तव्य पालन करते हुए चुपचाप संसार से विदा होजाते हैं। जो मनुष्य समाज ऐसे महात्माओं के वचनों का आदर करता है वह संसार में आदर पाता और सुख उठाता है और जो ध्यान नहीं देता वह अपमानित होकर दुःख उठाते हैं, इस सिद्धान्त के आधार पर ऋषि ने प्रचार आरम्भ कर दिया। कभी प्रचार कभी शास्त्र विचार और कभी लेख द्वारा वेदों के समाचार। तात्पर्य यह है कि उपदेश का जो साधन हो सकता है काम में लाते थे और कभी २ हर्ष शोक भी प्रकट हो जाते थे। शोक का कारण तो यह होता था कि यह आर्यजाति जिसको सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान मिला था जिसने ज्ञानचक्षु से सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों का साक्षात्कार कर लिया था और जो लोग सर्वदा सब को धर्म का मार्ग बताते और मानुषी सभ्यता सिखाते थे और जिनके चरणों पर राजा और रंक अपने शिर नवाते थे। अब वही जाति सब तरह से अपना गुण गौरव खोकर दुःखों की दलदल में फंस कर रो रही और आंसुओं से मुख को धो रही है इस समय न उसको हानि लाभ का ज्ञान है, न भले बुरे का ध्यान, न शत्रु मित्र की पहचान है।

कई बार हर्ष शोक के विचार ऋषि के अन्तःकरण में आते रहे, परन्तु कभी भी उत्साहहीन नहीं हुए। साइंस की लहर बड़े प्रबल वेग से चल रही थी। अंग्रेज़ी के विद्वान् जो साइंस की विद्या से अभिज्ञ थे उनकी युक्तियों के आगे पुराणों की बातों का ठहरना तो असम्भव ही था और वैदिक सिद्धान्तों से नावाकिफ़ थे ऐसी अवस्था ने विश्वास को खोकर बहुत से विद्वान् इनसे पृथक् हो ईसाई मत की शरण में जा रहे थे। इतना बड़ा सुशिक्षित जन समुदाय यदि उसको वेदों के ज्ञान की सहायता न मिलती तो आवश्यक था कि वह अपना कोई दूसरा मार्ग स्वीकार कर लेता। परन्तु ईश्वर की महिमा अपार है जिसको बचाना चाहता है उसे कौन मिटा सकता है।

स्वामी विरजानन्द की सांदीपन कुटिया में भविष्य में ऋषि की पदवी पाने वाला एक तपस्वी बालक वेदों की सत्यविद्या का ज्ञान उपलब्ध कर रहा था। ऋषि के हृदय में वेदों के लिए महान् आदर तथा तद्विपरीत ग्रन्थों के लिए निरादर भाव आचार्य ने उत्पन्न कर दिया था। इसीलिए ऋषि को ईश्वर से अत्यन्त प्रेम था। और उसीके बल से बलवान् था। यही कारण था कि वह सत्य ग्रहण करने के लिए सदा उद्यत रहते थे। ऋषि ने पौराणिक भ्रम जालों में फंसे कुमार्ग पर जाते देश और जाति को सुमार्ग पर लाना ही अपने

जीवन का उद्देश्य बनाया। ऋषि ने अपने जीवन के प्रारम्भ काल में ब्रह्मचर्य की भट्टी में खुद को तपा कर पारस बना लिया था इसीलिए वह देश और ज़ाति को सोना बनाने की योग्यता रखता था।

यद्यपि ऋषि पुराणों का खण्डन करते थे तथापि यदि कोई उपहास रूप में तद्विषयक उन से आकर प्रश्न करता तो वह उसे युक्तियों से उस बात को सिद्ध करके प्रश्नकर्ता के मन को संतोष करा देते थे। इस से इनके ज्ञान की पूर्णता तथा गम्भीरता का सिक्का जनता पर बैठ गया। ईश्वरीय ज्ञान वेद की गम्भीरता तथा मनुष्यकृत पुराणादियों की असत्यता लोगों के हृदयों में घर कर गई इसी के साथ ऋषि ने दूसरे सन्तों साधु महात्माओं की तरह पर्वत की कंदरा में बैठकर अपने ही आत्मा का उन्नत करने में जीवन व्यतीत नहीं किया क्योंकि वह दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति तथा दूसरों के सुख में अपना सुख समझते थे। इसीलिए ऋषि ने आर्य-समाज के दश नियमों में एक नियम यह लिखा है कि प्रत्येक को अपने ही आराम या उन्नति में प्रसन्न न रहना चाहिए बल्कि सब के आनन्द में अपना आनन्द या उन्नति माननी चाहिए।

स्वाध्याय ही जीवन है।

स्वाध्याय से मनुष्य के जीवन में विचित्र परिणाम होता है। मनुष्य जीवन के उद्देश्य की पूर्ति का मुख्य साधन यही है। बिना स्वाध्याय कोई भी पुरुष अपने हिताहित की विवेचना ठीक ठीक नहीं कर सकता। जिन पुरुषो की ख्याति अद्यावधि संसार में विख्यात है व जिनका नाम अतीव गौरव व प्रतिष्ठा से स्मरण किया जाता है, जिनके जीवनचरित्र का अवलोकन करना साधारणपुरुषों के अन्तःकरण को सच्चरित्र बनाने का हेतु बन जाता है वे सब महानुभाव स्वाध्यायशील थे।

प्रबल स्वाध्याय के प्रताप का ही यह फल है कि जिन्होंने परमेश्वर रचित पदार्थों की सहायता से ऐसे २ अद्भुत और विचित्र गुणों का आविष्कार कर दिया कि जिनको स्वाध्यायहीन पुरुष अपने विचार में भी नहीं ला सकते। इसी विषय में उपनिषदों का वचन है—

स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यम्।

अर्थात् स्वाध्याय से कभी भी प्रमाद (लापरवाही) न करना चाहिए। इससे मनुष्य के मन में सुधार के अंकुर और बुद्धि में सूक्ष्मता उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य उचितानुचित कार्य को जान कर अनुचित के परित्याग और उचित के ग्रहण में समर्थ (कामयाब) हो जाता है। परम्परा से एवंभूत सन्मार्ग का प्रदर्शक स्वाध्याय ही है।

जिस प्रकार अभिनवजात अंकुर को जल की आवश्यकता होती है, यावत् उनकी मूल शाखा जलाशय तक न पहुंच जाए। जलसेवन अंकुर को वृक्ष और वृक्ष को सुपुष्पित सुपल्लवित बनाने का हेतु बन जाता है। बिना जल की सहायता के अंकुर मुरझा कर नष्ट होता है। ठीक यही सम्बन्ध मनुष्य जीवन के साथ स्वाध्याय का है। ससे मनुष्य के विचार शुद्ध और पवित्र होकर उसमें परोपकार करने की योग्यता का सम्पादन कर देते हैं जिससे मनुष्य अपने लिए हितकर होकर जनता के वास्ते हितकारी बन जाता है, जिसस संसार में सुख की मर्यादा उत्तरोत्तर स्थिर हो जाती है। प्रमाद से जो व्यक्ति अथवा जाति स्वाध्याय से विमुख होती जाती है, शनैः २ उसका अधःपतन होने लगता है। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक बल का ह्रास, जगत् में उपहास, इच्छा का विघात, मनोमालिन्य, उदासीनता, आदि अनेक उपद्रवों के सञ्चार से जीवनमात्र ही भार हो जाता है। अतः स्वाध्याय का सदैव आदर करो और कर्त्तव्य के पालन में तत्पर रहो। योगदर्शन में भी स्वाध्याय का फल बताया है।

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोगः ।

इसका आशय यह है कि स्वाध्यायशील पुरुष का इष्टदेवता के साथ मिलाप या उसके साथ आलाप होता है। यह विचारणीय विषय है। यथा आपके पुस्तकालय

में अनेक प्रकार के पुस्तक रक्खे हैं। आज महात्मा व्यास-देव जी या महानुभाव शङ्कराचार्य जी महाराज संसार में नहीं हैं, परन्तु उनके साथ वार्तालाप करने का, उनके रचित शारीरिकसूत्र व भाष्यादि पुस्तकावलोकन के बिना उपायान्तर नहीं है। पुनः २ उनका स्वाध्याय करने से यह प्रतीत होता है कि हम उनसे ही आलाप कर रहे हैं। कारण यह है कि उन ग्रन्थों में उन महानुभावों के ही मनोभाव विद्यमान हैं। यदा कदा आपको वेदान्त विषय में कोई शङ्का उत्पन्न हुई। वेदान्तदर्शन के देखने से शङ्का निवृत्त होने पर विचारने से यह पता लगता है कि साक्षात् महात्मा व्यासदेवजी आए और शङ्कासमाधान करके अल्मारी के एक कोने में जो उनका नियत स्थान है जा विराजे, यही उनके साथ मिलाप है। यदि आर्य-समाज अपनी सारी विभूति देकर भी महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराज से वार्तालाप करना चाहे तो असम्भव है, वह संसार में विद्यमान ही नहीं हैं, परन्तु उनके रचित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकादि पुस्तकों के स्वाध्याय से उनके साथ मिलाप और आलाप हो जाता है। इस कारण सर्व सज्जन महाशयों को न्यून से न्यून दो घण्टा स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। परन्तु हमको आलस्य ने इतना दबाया है कि वह ऋषि जो पुस्तकाकार अल्मारी में पड़े दीमक से सताये जा रहे हैं, उनका मिलाप तो क्या होगा किन्तु कोप तो अवश्य ही

होगा । इस प्रकार का कोप किसीके सुख का कारण नहीं हो सकता । इस कोप की निवृत्ति स्वाध्याय से हो सकती है । आर्यसमाज के उत्सव के समय जहां उपदेश व भजनादि होते हैं वहां एक समय इस विचार के लिए (कि आर्यसमाज व वैदिकधर्म की उन्नति किस प्रकार से हो सकती है ?) स्थिर किया जाता है । जहां कई और उन्नति के कारण बताए जाते हैं वहां स्वाध्याय का न होना उन्नति का बाधक और इसका होना उसका साधक प्रकट किया जाता है । इसमें विचित्रता यह है कि जो महाशय इस विषय की पुष्टि करते हैं वह स्वयं स्वाध्याय-विहीन रहते हैं । यह कितनी त्रुटि की बात है ॥

स्वाध्याय के बिना सद्विचार स्थिर नहीं रहते । सद्विचारों के अभाव से सदाचार की हीनता प्रबल हो जाती है । सदाचार का दूर हो जाना किसीके भी सौभाग्य का कारण नहीं हो सकता, अतः स्वाध्याय को स्थिर करके अपने हिताहित की चिन्ता करो । ऋषि ने वेदों का जो ईश्वरीयज्ञान है स्वाध्याय किया, जीवनमुक्ति को प्राप्त कर परमात्मा की प्राप्ति का उपाय प्रकाश कर के शरीर त्यागानन्तर प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होगए । सबका इष्टदेवता जो परमात्मा है उसके साथ सम्प्रयोग करने का उपाय स्वाध्याय ही है ।

——:०:——

उदारशील बनो।

जब तक मनुष्य का स्वभाव उदार नहीं होता तब तक उसके अन्तःकरण से स्वार्थ का उच्छेद होना अति कठिन है, बिना इसके दूर हुए कोई पुरुष लोकोपकार का काम नहीं कर सकता।

जैसे चक्षु को शुक्ल पीतादि रूपों के देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार परोपकार करने के लिए स्वार्थत्याग की ज़रूरत है। जो लोग खुदगर्ज़ी को छोड़े बिना परोपकार करने में तत्पर होते हैं वे वास्तव में धर्म की मर्यादा को नहीं जानते। धर्म-मर्य्यादा के स्थिर करने में वे ही पुरुष सामर्थ्यवान् हुए जिन्होंने स्वार्थ को छोड़ कर अपने आपको उदारचित्त बनाया। किसी कवि ने उदार और अनुदार पुरुषों का स्वभाव एक श्लोक में वर्णन किया है:—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥

यह मेरा है और यह अन्य है ऐसा लघु विचार स्वार्थी पुरुषों का होता है, जो परोपकार करने की सामग्री से विपरीत है। जिनके विचार अव्याहत आकाश की तरह बेरोकटोक होते हैं सम्पूर्ण वसुधा उनका कुटुम्ब अर्थात् अपना आप ही होता है। जिस प्रकार पुरुष

अपने लिए या अपने अङ्गों के लिए अनिष्ट चिन्तन नहीं कर सकता प्रत्युत पुष्टि में ही लगा रहता है, तद्वत् उदारवृत्ति विशिष्ट प्राणिमात्र की हितचिन्ता में सदैव प्रयत्न करते रहते हैं, ऐसा व्यापार स्वार्थी पुरुषों की सामर्थ्य से बाहर है।

अतः पुरुषों को परोपकार करने के लिए स्वार्थत्यागी और उदार बनने का यत्न करना चाहिए।

स्वार्थ–अर्थात् खुदगर्ज़ी मनुष्य के उदारभावों को नष्ट कर दुष्टभावों को जो प्राणिमात्र के दुःख का बीज हैं उत्पन्न कर देती है। दुष्टभावों का महत्त्व महात्मा मनु जी महाराज इस प्रकार लिखते हैं–ध्यान से सुनियेः——

वेदास्त्यागश्च यज्ञश्च नियमाश्च तपांसि च।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित्॥

अर्थ–चारों वेद जिनमें कर्म, उपासना, ज्ञान और विज्ञान काण्ड का निश्चय किया हुआ है जो मनुष्यमात्र के लिए सन्मार्ग प्रदर्शक है।

त्याग–पुरुष के जीवन में एक ऐसी शक्ति है जिससे परमात्मा को प्राप्त कर सकता है।

त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः।

यज्ञ–अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ का वेदादि सत्यशास्त्रों में विधान किया हुआ है। यज्ञकर्म को ठीक जान कर मनुष्य अभ्युदय को प्राप्त होता है इससे अधिक कोई भी पुनीत कर्म नहीं है।

नियम—योगशास्त्र में नियम पांच प्रकार के कहे गए हैं:—

शौच—बाह्याभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का है। बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि, सत्यभाषणादि के द्वारा मन की शुद्धि करना।

सन्तोष—स्तुति, निन्दा, हानि, लाभ, मान और अपमान में सत्य का परित्याग न करना 'सन्तोष' कहाता है।

तप—विपत्ति के समय धैर्य का न छोड़ना और सम्पत्ति में निरभिमान रहना 'तप' माना गया है।

तप—मलविक्षेप के दूर करने के लिए भी सदैव प्रयत्न करना 'तप' कहाता है।

स्वाध्याय—वेदादि सत्यशास्त्रों का सदैव विचार करते रहना 'स्वाध्याय' कहा गया है।

ईश्वरप्रणिधान—अशुभ कर्मों के करने में सदैव ईश्वर का भय और शुभ कर्मकलाप को ईश्वरार्पण करना।

यह पञ्चामृत अर्थात् वेदों का पढ़ना, त्याग, यज्ञ, नियम और तप सर्वोपरि जन्म मरण के जाल को काट कर मोक्ष के साधन हैं। परन्तु जिसका भाव दुष्ट है उसके लिए फलदायक नहीं हो सकते।

जब मनुष्य के शुद्ध भाव होते हैं तब विद्यादि सत्य शास्त्रों का फल यथार्थ रूप में होता है, मनोमालिन्य होने

से (जैसे मलिन दर्पण में मुख देखने से 'मैं मलिन हूं,' आत्मा के लिए चिन्ता और शोक रूप हो जाता है) वेदादि सत्यशास्त्र आत्मा के लिए हितकर नहीं होते ।

अतः मनुष्य के शुद्ध भाव होने से वेदादि शास्त्र सन्मार्ग प्रदर्शक होते हैं अन्यथा नहीं । इसलिए प्रत्येक पुरुष को उचित है कि वह उत्तमाधिकारी बने और अपने मन के पवित्र करने में सदैव प्रयत्न करे । इस उदाहरण से आप अच्छी प्रकार समझ सकते हैं कि एक पात्र जिसमें अम्ल (खटाई) लगी हुई है यदि उसको स्वच्छ किये विना उसमें दूध डाल दें तो वह दूध अपनी असली दशा में नहीं रहता, पात्र के दोष से दूषित हो कर दुग्ध फट जाएगा, इसी प्रकार विद्या दुष्ट भावों से मिल कर अविद्या में परिणत होजाती है जो पुरुष को सन्मार्ग से हटा कर असन्मार्ग (कुटिलमार्ग) की ओर ले जाती है, जो संसार में शान्ति के भङ्ग करने का निमित्त बन जाता है । जिसके अन्तःकरण में शुद्ध भावों का आविर्भाव होता है तब उसका यह स्वभाव बन जाता है कि स्वयं अनेक प्रकार के कष्ट उठा कर लोकोपकार का काम वह नहीं छोड़ता ।

उदारवृत्ति के विना शुद्धभाव नहीं होता और विना शुद्धभाव के लोक का हित होना अति कठिन है । उदारता शुद्धभाव को उत्पन्न करके पुरुष को विपत्ति के

समय अति कठोर और सम्पत्ति के समय विनीत और दुःखित को देख कर करुणामय बना देती हैं। बस, ऐसे पुरुषों की अधिकता संसार को सुखमय बनाने का हेतु बन जाती है। किसी कवि ने इस पर बहुत ही अच्छा विचार किया है। जैसे:—

आक्रोपितोपि सुजनो न वदत्यवाच्यम्—
निष्पीडितोपि मधुरं क्षरतीक्षुदण्डः।
नीचो जनो गुणशतैरपि सेव्यमानो
हास्येषु यद्वदति तत्कलहेषु वाच्यम्॥

जिस तरह इक्षु दण्ड (गन्ना) पेला जाने पर भी मधुर रस को ही छोड़ता है ठीक इसी प्रकार उदार वृत्ति सज्जन पुरुष अनेक कष्ट पड़ने पर भी लोकहित की चिन्ता ही करते रहते हैं, न्यायपथ से कभी भी पृथक् नहीं होते। तथा उदारताहीन पुरुष इस कार्य के करने में भी असमर्थ दिखाई देते हैं उनका बल बुद्धि और पुरुषार्थ सब स्वार्थ के लिए ही होता है, स्वार्थ के रुकने से कलह के उत्पन्न करने में कटिबद्ध होजाते हैं, अतएव कवि ने ऐसे पुरुषों को नीच शब्द से याद किया है।

महानुभाव ऋषि दयानन्द महाराज ने बुद्धि, शुद्धि द्वारा विद्या का ग्रहण किया, शुद्ध भावों के साथ मिल कर विद्या ने अन्तःकरण में जगत्‌हित को अर्थात् उदारवृत्ति को उत्पन्न कर दिया। उदारता ने फिर स्वार्थ

को आने का अवकाश ही नहीं दिया । उदारवृत्ति ने अविद्या के दूर करने में जो मनुष्य को स्वार्थी बनाने का एक मुख्य कारण है कितने ज़ोर से संग्राम किया । इस वृत्ति में एक और विचित्र शक्ति है जो इस समय ऋषि के चरित्र से हमको प्रत्यक्ष मिलती है, उदार पुरुष के साथ चाहे कोई कितना ही अनुचित कार्य क्यों न करे, वह वृत्ति उसको उचित कार्य करने के लिए ही बाधित करती है । सुनिये—

ऋषि को एक पुरुष ने, जो हेत्वाभास की तरह ऊपर से मित्र और भीतर से शत्रु था, विष दे दिया । अचेत अवस्था में किसी ने स्वामी जी से कहा कि वह मनुष्य पकड़ा गया । कई बार ऐसा कहने पर स्वामी जी ने शनैः शनैः उत्तर दिया कि उसको छोड़ दो । मुक्ति का उपदेश करने वाला, सन्मार्ग दिखलाने वाला किसी को न बन्धन में फंसाता और न उल्टे मार्ग पर चलाता है । इसके पश्चात् जब स्वामी जी को नशे के दूर हो जाने से होश आया तो मनुष्य समुदाय की उपस्थिति में उस पुरुष को जिसने स्वामी जी को विष दिया था लाए, तो स्वामी जी ने फिर कहा कि अच्छा जो हुआ सो हुआ, अब इसको छोड़ दो । लोगों ने कहा कि स्वामी जी महाराज! ऐसे मनुष्य को छोड़ना उचित नहीं, क्योंकि यह बड़ा दुष्ट है । ऋषि ने इसका यह उत्तर दिया

कि आप लोग विचार तो करें कि जब एक आदमी अपनी बुराई को नहीं छोड़ता तो एक सज्जन पुरुष अपनी भलाई को छोड़ दे, सो कब उचित है ?

इस परीक्षा से आपको पता लगा होगा कि उदार-वृत्ति पुरुष को कैसा उत्तम और सहिष्णु बनाती है और मनुष्य जीवन को उच्च आदर्श की तरफ़ ले जाती है, अतः मनुष्य को उचित है कि वह उदार बनने का यत्न करे अथवा लोक-हित-चिन्ता को सर्वथा त्याग दे। यही सर्व सत्यशास्त्रों की मर्यादा है।

अभ्यासी बनो ।

. अभ्यास के बिना कोई भी पुरुष संसार में प्रतिष्ठा व मान का भागी नहीं हो सकता । यावत् संसार में कोई भी मनुष्य या मनुष्य समुदाय अपने आपको उन्नतावस्था में नहीं प्राप्त कर सकता तावत् वह अभ्यास करने को अपना मुख्य कर्त्तव्य न मान ले । अद्य संसार में जितने अद्भुत दृश्य व विचित्र घटनाएं दृष्टिगोचर हो रही हैं, वे सर्व अभ्यासशील जनों की क्रीड़ामात्र ही हैं। अभ्यास में यह एक विचित्र शक्ति है कि कोई भी वस्तु व मार्ग कितना ही कठोर अथवा विकट क्यों न हो इस के बल से सरल और सुगम हो जाता है और उसके अभाव में साधारण से साधारण कार्य, सुगम से सुगम पथ भी भयङ्कर रूप धारण कर असाध्यसम होकर प्रतीत होता है । अन्वयव्यतिरेक व कार्यकारणभाव से यह सिद्ध होता है कि अभ्यास ही मनुष्यों की सुख सम्पत्ति और निःश्रेयस का एकमात्र कारण है और अभ्यास का न होना ही भ्रमजाल में फंस कर दीन, बलहीन, मतिमलीन होकर जन्ममरणादि अनेकविध दुःखों का कारण हो जाता है । अब मैं दो दृष्टान्त आपके समक्ष उद्धृत करता हूं । पाठक महोदय उनको पढ़कर अभ्यास के महत्त्व को अनुभव कर स्वयमेव अभ्यासी होने का यत्न करेंगे ।

(१) वेदों में अधिक समास नहीं हैं, जो हैं वे दो २ व तीन २ पदों से मिल कर बने है, क्रिया व उपसर्ग सब ही प्रत्यक्ष और भाषा सरल है, परन्तु अभ्यासाभाव से यथार्थ रूप में उनका अर्थबोध होना कितना कठिन प्रतीत होरहा है। महीधरादि विद्वानों को (यह जानते हुए भी कि वेद ईश्वरीयज्ञान है) किंचित् बोध न हुआ कि निर्भ्रान्त परमात्मा की शान में इस प्रकार की अश्लील वाक्यरचना व गाथा हो सकती है वा नहीं ? यहां अभ्यास का व्यतिरेक है। वर्तमानकालीन काव्यों में समास बहुत और दीर्घ हैं, अप्रतीत क्रिया, कठिन भाषा है, परन्तु अभ्यासाभार से सुगम हो रहे हैं, यहां अभ्य.स का अन्वय है। वेदों के पठन पाठन से परमात्मा का ज्ञान, आत्मा का कल्याण, कर्त्तव्य की पहिचान और दुःखों की हानि है, परन्तु अभ्यास के न होने से उसमें उत्तीर्ण नहीं हो सकते, काव्यों में सारशून्य सरलताहीन भाषा का बोध होता है अभ्यास के होने से ही पढ़ने पढ़ाने वालों को रुचिकर हो रहे हैं। जिस देश के महानुभाव ऋषि मुनियों ने अभ्यासी होकर वैदिक विज्ञान के द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के मार्गों को निर्दोष कर दिया था, आज उन्हीं की सन्तान आलस्य और प्रमाद में फंस कर मिथ्याभिमान वैर विरोध दुष्ट रसमोरिवाज के पङ्क में धंस कर जिस दुःख को अनुभव

करने वालों का दृष्टान्त बन रही है, यह कथन से बाहर है।

(२) इसके विपरीत साधारण दशा को प्राप्त अन्य देश निवासियों ने लगातार अभ्यास का आश्रय लेकर विचित्र और अद्भुत वस्तुओं का आविष्कार करके सांसारिक सुख को प्राप्त किया और प्रतिष्ठा के भागी हुए। मित्रवर ! यह अभ्यास ही की तो महिमा है कि वह जिस वस्तु की अनायास रचना कर देते हैं वह अभ्यास-हीन पुरुषों के बुद्धिपथ में आती ही नहीं।

परमात्मा की सृष्टि में सर्व पदार्थ विद्यमान ही हैं, अभ्यासशील पुरुष उन पदार्थों की संयोजना व वियोजना के द्वारा उनको अपने अनुकूल और सुख के साधन बना लेता है, परन्तु अभ्यास रहित उन सुख साधनों की उपस्थिति में भी सुख से वञ्चित होकर दुःख पाता है। महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराज ने अभ्यासी होकर वेदों के शब्दार्थ सम्बन्ध की छानबीन की और जान लिया कि इससे बढ़ कर मनुष्य जीवन को पवित्र करने वाली और कोई शिक्षा नहीं है इसलिए—

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य कर्त्तव्य है"

यह नियम बना दिया। उनको यह निश्चय था कि यदि आर्य्य सन्तान आलस्य त्याग वेदों के अभ्यास पर तत्पर हो जाए तो विधि निषेध रूप कर्मों को जान

वर्णाश्रमव्यवस्था का ठीक २ पालन करने लग जाएगी तब संसार का उपकार करना कुछ भी कठिन न होगा। जगज्जन उपकृत होकर इनकी प्रशंसा के गीत गाएंगे। सज्जनो! आप प्रकृत आर्य्यपदवाच्य बनो और परस्पर मिल कर विचारो कि हम संसार का उपकार किस तरह कर सकते हैं? व्यर्थ दंगादंगी में तो आप अपना उपकार भी नहीं कर सकते, संसार का उपकार करना तो पृथक् रहा।

अतएव आर्य्य-सज्जनो! अभ्यासी बनो, अभ्यास करना सीखो, आने वाली सन्तान को अभ्यासशील बनाओ। सत्य है—

"अभ्यसनशीलाः सुखिनो भवन्तीति".

सद्गुण सम्पत्ति के लिए लगातार प्रयत्न करने का नाम 'अभ्यास' है।

(१) अभ्यासी पुरुष व्यसनी नहीं होता, क्योंकि बाह्य विषयों से आने वाले संस्कार उसके अन्तःकरण में स्थिर नहीं होते।

(२) अभ्यास करना यद्यपि कठिन तो प्रतीत होता है, किन्तु यदि पुरुष कुछ काल तक इसका आदरपूर्वक सेवन करे तो फिर अभ्यास ही उसको नहीं छोड़ता। हिताहित मार्ग का आचार्य्य बन कर उत्तरोत्तर जीवन को पवित्र बनाता है।

(३) अभ्यासी पुरुष ही आरोग्य और उपकार करने में सामर्थ्यवान् होता है।

(४) अभ्यासी पुरुष दीन व बलहीन कभी नहीं होता।

(५) अभ्यासी पुरुष अभ्यास के बल से मृत्यु से नहीं डरता। कारण यह कि उसका जीवन बाकायदा है। सत्य है जिसका जीवन बाकायदा है उसकी, मृत्यु बाकायदा है। जीवन के बेकायदा हो जाने से मृत्यु भी बेकायदा होजाती है, अतः अभ्यासी बनो।

विचारशील बनो।

विना विचारे जो कार्य किया जाता है उसका परिणाम ठीक नहीं होता। कर्त्ता के अनुकूल फल का न होना जगत् में उसके उपहास और अन्तःकरण में पश्चात्ताप का कारण बन जाता है, जिससे विकलता की वृद्धि और परिश्रम की हानि उत्तरोत्तर विचारों की दुर्बलता के निमित्त हो जाती है। संसार में संपूर्ण कार्य विचाराधीन हैं। जिस दोष से विचार दूषित हो जाते हैं, ठीक उसी दोष से सब व्यवहारों का दूषित हो जाना अवश्यमेव भावी ही है, अतएव संसारक्षेत्र में सदैव सबको विचारपूर्वक कार्य करना ही उचित है। विचारने और शास्त्रावलोकन से यह वार्ता स्पष्ट विदित हो जाती है कि यावद् अन्तःकरण सद्विचारों के प्रभाव से प्रभावित नहीं हो जाता तावत् लोकोपकार करने का अंकुर उसमें उदय ही नहीं होता। परहित चिन्ता का मूलकारण सद्विचारों की जागृति ही है। इसके विना तो अपना उपकार भी आप नहीं कर सकता औरों का उपकार करना तो अति दूर है। सुविचार प्रथम पुरुष के मन में सद्गुणों का प्रसार करके उसको उपकार के योग्य बनाते हैं। तत्पश्चात् उस पर लोकोपकार करने का शासन जमाते हैं। सभ्यजनो! यदि हम किञ्चित् विचार से काम लें

तो कितना सीधा और सरल मार्ग प्रतीत होता है कि जो स्वयं बली व गुणी हैं वे औरों को बलवान् व गुणवान् बना सकते हैं अन्यथा नहीं । कारण यह है कि जो वस्तु जिसके पास उपस्थित ही नहीं है वह अन्य पुरुषों को नहीं दे सकता । संसार में जिन महानुभावों ने परोपकार के लिए पदारोपण किया, उन्होंने प्रथम दीर्घ काल तक निरन्तर और सत्कारपूर्वक उसके साधनों के एकत्रित करने में प्रयत्न किया, साधन संपन्न होते ही अन्तरंग में उदारवृत्ति का तरंग उठने लगा । उसके उत्थान होते ही "उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" का राग अलापने लगे । ये ही मनुष्य जीवन की अन्तिम सीमा है । इस वृत्ति में एक अद्भुत शक्ति है कि सत्य के विरोधी पदार्थों को चाहे वे कितने ही प्रिय और सुख के साधन क्यों न हों, परित्याग कर देती है और सदैव सर्वथैव सत्य की रक्षा करती है । स्वभाव इसका विचित्र है । यह वृत्ति दुःखी, दीन, बलहीनों को देख कर अतीव कोमल हो जाती है । उन असहायों की सहायता करना, विद्याहीनों को विद्या दान, बलहीनों को बलप्रदान करना ही अपना मुख्य उद्देश्य बना लेती है । तन मन धन अर्थात् सर्वस्व को परोपकार के अर्पण कर देती है और विपत्ति के आने पर अति कठोर वज्रसम होकर प्रतीत होती है । प्रत्येक विपत्ति इसके

सामने सम्पत्ति के रूप में बदल जाती है। इसकी आकृति अति मनोहर है। इस देवी के जिसको दर्शन हो जाते हैं, वह फिर, जैसे परिवर्तन शीशे में जो पतन हो जाती है वह फिर नहीं निकल सकती, वैसे इसका ही होजाता है। विचारशील पुरुष जब क्रमशः हिताहितविवेकभेदयुक्त होकर अहित की निवृत्ति और हित में प्रवृत्ति करते हैं, तत्पश्चात् इस उदारवृत्ति की आवृत्ति अन्तःकरण में स्वयमेव होने लगती है। अतएव विचारशील बनना और विचारपूर्वक कार्य करना ही सर्व पुरुषों को हितकारी हो सकता है। यावदन्तःकरण सच्चरित्र नहीं होता तावत् इस उदारवृत्ति का चित्र उसमें उतर ही नहीं सकता। अन्तःकरण की सन्मार्ग प्रवृत्ति का कारण सत्संग और उन महानुभावों के चरित्रों का स्मरण करना ही है। कदाचित् क्वचित् सांसारिक दुर्घटनाओं का अवलोकन कर अदृष्टजन्य भी इसकी आवृत्ति होती है। वैदिक धर्म के समय में तो इस प्रकार के पुरुष सहस्रशः थे। उपनिषद् व दर्शनग्रन्थ इस विषय में साक्षी दे रहे हैं, परन्तु महाभारत युद्ध के लगभग तीन सहस्र वर्ष के बाद महात्मा बुद्ध का आविर्भाव हुआ। पुरुषों की जीर्ण दशा व मरणावस्था को निहार कर उसके अन्तःकरण में एक आघात हुआ उसके होते ही उदारवृत्ति का विकास होगया। दुःखियों के दुःख को दूर करना ही अपने जीवन

का मुख्य उद्देश्य मान लिया । कुछ काल तक संसार के सुख को अनुभव करते हुए जब एक राजकुमार उत्पन्न हुआ तब उसके कुछ काल बाद फिर उस वृत्ति का उत्थान हुआ, उदासीन होकर संसार सुख परित्याग के लिए कटिबद्ध हो गए। चलते समय पुत्र दर्शन का स्नेह हृदय में उत्पन्न हुआ । जहां अपनी माता के पहलू में बालक शयन कर रहा था, उसी स्थान में आ उपस्थित हुए । अद्भुत दृश्य का सामना हुआ । चक्षु से अश्रुपात, शरीर में कम्प हो रहा है । एक ओर पुत्र का स्नेह दूसरी ओर लोकोपकार का ध्यान ! क्या ही विचित्र घटना है ! उदारवृत्ति परहित चिन्ता का मार्ग दिखाती है, पुत्र की प्रीति मोह में डाल कर जगत् में फंसाती है । इस विप्रतिपत्ति के बाद भविष्य में होने वाले बुद्ध ने पुत्र स्नेह का परित्याग कर दिया । उदारवृत्ति ने योगिराज कृष्णचन्द्र की निम्नोक्ति का ध्यान दिलाया—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥

मन विषय वासना में फंसने से लोकोपकार नहीं हो सकता यह कह कर जंगल का मार्ग लिया । साधन-सम्पन्न होकर महात्मा ने दीन दुःखियों के क्लेश मोचन और शान्ति प्रदानार्थ जो प्रयत्न किया उसे पाठकगण स्वयं जानते ही हैं अधिक कथन की आवश्यकता नहीं

है। बुद्धदेव के देहान्त के बाद कुछ काल तक तो उस के उद्देश्यों की उन्नति होती रही, उसके पश्चात् जिन टियों के दूर करने का यत्न किया था, उन्हीं दोषों ने आ घेरा। महात्मा का कथन था कि कर्म्म तन्त्र संसार है। कर्म के सुधार से मनुष्य जीवन का सुधार हो सकता है। इस कारण उपदेशार्थ ऐसे २ पुस्तक निर्माण किये थे।

यथा मनः पूर्वाङ्गमा धर्मा मनः श्रेष्ठो मनो यमः।
मनसा चेत् प्रदुष्टेन भाषते वा करोति वा॥
ततो दुःखमन्वेति चक्रवद्वहतः पदम्॥
मनः पूर्वाङ्गमा धर्मा मनः श्रेष्ठो मनोमयाः।
मनसा चेत्प्रसन्नेन भाषते वा करोति वा॥
ततः सुखमन्वेति छायेव ह्यनपायि तत्॥

सो इनका निरादर होने लगा।

इसके पश्चात् महानुभाव शंकर का आविर्भाव हुआ। गुरुकुल से विद्याव्रत स्नातक होकर निकले ही थे कि वैदिकधर्म के विरुद्ध मत का प्रचार देख कर मन में खेद का संचार हुआ। तत्काल ही उसकी निवृत्ति और पुनः वैदिकधर्म की प्रवृत्ति का उपाय सोचने लगे। संन्यासाश्रम ग्रहण करना उचित जान कर माता से आज्ञा लेने गये। मोह में फंस कर माता ने आज्ञा नहीं दी। इधर माता की आज्ञा का आदर, उधर लोकहित चिन्ता का ध्यान था किंकर्त्तव्यविमूढ होने से उनके

मन में विकलता का प्रसार होने लगा । एक समय तड़ाग में स्नान के निमित्त गये । वहां इस चिन्तारूपी ग्रह से ग्रस्त होकर कहने लगे कि मुझे ग्रह ने ग्रस लिया है । यह सुन कर रुदन करती हुई माता तड़ाग तट पर आई, जहां चिन्तारूपी नक्र से व्याकुल होकर शंकर खड़े थे । पुत्र को पुकार कर विलाप करती हुई भूमि में पतित होगई । समय पाकर तेजस्वी बालक बोला कि माता इस प्रतिज्ञा से मुझे नक्र छोड़ता है कि यदि आप मुझको लोकोपकार करने की आज्ञा दें । माता ने जीवन रक्षा का उपाय सोच कर प्रसन्नता से आज्ञा देना स्वीकार किया । अति मोद से ओजस्वी शंकर संन्यास ग्रहण करके लोकोपकार करने के लिए लगातार यत्न करने लगे । उदारवृत्ति का फल यह प्रत्यक्ष ही है । सत्य है—

उदारवृत्तिविशिष्टाः परदुःखप्रहाणाय कृतप्रयत्ना भवन्तीति नेतरो जनः ॥

अब विचारना यह है कि जिस वेदान्त की शिक्षा ने शंकर को परोपकार करने के लिए लगातार प्रयत्न करने को उद्यत किया, आलस्य और प्रमाद को त्याग कर आजीवन वैदिक धर्म के प्रचार के लिए यत्न करते रहे, कितने शोक और ग्लानि का स्थान है कि आज उनके अनुयायी उनको प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने वाले उसी शास्त्र को पढ़ कर, उसी आश्रम में होते हुए आलस्य और प्रमाद में अपना

जीवन व्यतीत करते हैं। परहित चिन्ता तो दूर रही, अपकार की ओर उलटा संसार को लगा रहे हैं। विरुद्ध गमन करके उनके अनुयायी बनना लज्जास्पद है। उन्होंने बताया था कि–

'वेदो नित्यमधीयताम्' 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

इस ब्रह्मसूत्र पर भाष्य करते हुए लिखते हैं कि साधन चतुष्टय के अनन्तर अर्थात् विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व इन साधनों के पश्चात् ब्रह्म के साक्षात्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए। सम्प्रति सम्पूर्ण साधनों को त्याग कर स्वयमेव ब्रह्म बन बैठे। उपकार कैसे हो सकता है जब कि उपकार के साधन उपस्थित ही नहीं हैं।

अढ़ाई सहस्र वर्ष के लगभग बीतने पर जब कि एक भयंकर समय आ उपस्थित हुआ था एक ओर ईसाई मत का प्रचार और दूसरी ओर इस्लाम का विस्तार प्रबल वेग से हो रहा था। भविष्यत् में होने वाले ऋषि का प्रादुर्भाव ठीक उसी समय हुआ। बाल्यावस्था से ही उस पर उदार-वृत्ति अपना शासन करने लगी। देखिए, किस प्रकार उदार-वृत्ति उसे धर्मप्रवर्त्तक बना रही है। शिवरात्रि के दिन पिता की आज्ञा से मन्दिर में पाषाणपिण्ड महादेव की पूजा करने गये। ठीक इसी समय उदारवृत्ति आगामी सन्मार्गप्रदर्शक बनाने के

लिए शिक्षा दे रही है कि "जिसके प्रबन्ध में संपूर्ण संसार है और जो सबका रक्षक और कर्मफल का विधाता है, वह यह नहीं"। उसको अन्वेषण करना उचित है। यह शिक्षा पाते ही पिता से प्रश्नोत्तर करने लगे, जिससे पिता का कोप और माता की दया बढ़ने लगी। ये विचार कुछ शिथिल होने ही लगे थे कि एक मृत्यु का दृश्य सामने आते ही उदारवृत्ति की प्रबलता पुनः हो गई। इसी अवस्था में 'मृत्यु से कैसे बचें और जगदीश्वर की प्राप्ति किस प्रकार हो' हृदयाकाश में बार २ यह ध्वनि होने लगी। उदासीनता बढ़ने लगी। माता पिता की चेष्टा संसार बन्धनों में जोड़ने की और उस तपस्वी की उनको तोड़ने की हुई। समय पाकर गृह का परित्याग कर दिया और लगातार जंगलों पर्वतों में परिभ्रमण करते हुए साधनों का संचय करते रहे। मृत्यु के भय से निर्भय होकर और ईश्वर का साक्षात् करके जिस अमूल्य धन का संचय किया था, उसका वितरण और विपरीतमार्ग में प्रवृत्त हुए जनों को सन्मार्ग दिखलाने में यत्न करने लगे। अनेक विपत्तियों के आते हुए भी बड़े प्रबल वेग से पाखंड का खंडन करना ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया और आज्ञा दी कि सर्वथा वैर विरोध को त्याग कर यहां जो पाखंड हो उसका निवारण करना तुम्हारा

कर्त्तव्य होना चाहिए। उनकी शिक्षा वेदादि सत्यशास्त्रों के भाष्य से विदित ही है। सत्यवादी सत्यमानी और सत्यकारी होना, अनुचित अभिमान का त्याग, उचित अभिमान का होना और कल्याण का मार्ग बताना। ठीक है—"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः"।

प्रिय पाठकगण! जिस धर्मरूपी धन को आपके अधिकार में दिया है। जब तक हम लोग उदार आत्मा न हो लें, तब तक उसकी रक्षा व वृद्धि कदापि नहीं कर सकते। इस कारण सर्वसज्जनों को उदारवृत्ति आत्मा होने का प्रयत्न करना उचित है।

ऋषि जीवन ।

ऋषि जीवन और मनुष्य जीवन में बड़ा भेद है । ऋषि भी मनुष्य होते हैं और मनुष्यों जैसा उनका रूप होता है, किन्तु कुछ नियम ऐसे हैं जो ऋषि जीवन को मनुष्य जीवन से भिन्न (पृथक्) करते हैं, वह नियम जागृत होकर मनुष्य को ऋषि बनाने के कारण बन जाते हैं । जिस तरह मनुष्य जीवन में जब कि बीमारी के नियम स्वास्थ्य के नियमों को दबा कर अपना काम करते हैं तो बीमार कहा जाता है और जब बीमारी के कारणों को दबा कर स्वास्थ्य के कारण प्रकट होते हैं तो उसी मनुष्य को 'स्वस्थ' कहते हैं । जिस तरह इन दोनों का सम्बन्ध बाह्य शरीर के साथ है ठीक उसी प्रकार अन्त-रीय शरीर जिसको 'अन्तःकरण' कहते हैं उसपर भी काम, क्रोध और अहंकार का दौर सदैव बना रहता है जब यह अपने अनुचित प्रभाव से जीवात्मा को पराजित करते हैं तो आत्मा अपने अस्तित्व को भूल कर भ्रम के चक्कर में पड़ जाता है, भ्रम की अधिकता इस की संकल्प शक्ति को (जो मनुष्य का उत्तम सत्व है जिसके बिना कोई भी काम लौकिक व पारलौकिक हल नहीं हो सकता है) नष्ट कर देती है इसके नष्ट होने से मनुष्य अपने कर्त्तव्य के पूरा करने में (जिसके लिए

ही मनुष्य का अस्तित्व संसार में विद्यमान है) असमर्थ हो जाता है, कर्त्तव्य से गिरना ही अकृतकार्यता का प्रकट होना है। अकृतकार्यता के साथ जिसका सामना होता है वह दुर्भागी, लाचार, ख़्वार और बीमार माना जाता है। योगिराज कृष्णचन्द्र गीता में लिखते हैं कि कामादि प्रबल होकर जीवात्मा के शत्रु हो जाते हैं। यह मारे आस्तीन होकर चित्त की शान्ति को नष्टभ्रष्ट करके सदैव आत्मा को बेचैन रखते हैं। ऐसा आचरण अपने लिए दुःखप्रद होकर औरों के दुःख का कारण बन जाता है। यह क्षुद्र, लघु मनुष्य जीवन है, पशु जीवन नहीं, क्योंकि पशु सदैव अपने कर्तव्य के पालन में कटि-बद्ध रहते हैं, कभी भी फेल नहीं होते, यदि उनके मार्ग में कोई रुकावट न हो।

मित्रो! अब इस विषय पर (कि वह कौन से नियम हैं जो मनुष्य जीवन को पल्टा देकर ऋषि जीवन बनाने के कारण होते हैं) विचार करें, इससे प्रथम मनुष्य जीवन जो तीन प्रकार का है वर्णन करना आवश्यक है। अधम मनुष्य, मनुष्य और ऋषि। मनुष्य वह है कि जिसका संकल्प सदैव यह हो कि मैं अन्याय से किसीके दुःख का कारण न बनूं और न कोई मेरे दुःख का कारण हो, जो न किसीको दबाता और न स्वयं दबता है यह मनुष्य जीवन है। वह मनुष्य जीवन अधम है कि

जो अपनी कार्यसिद्धि के लिए औरों के हानि लाभ की उपेक्षा ही नहीं करता । इस प्रकार का विचार बड़ा ही हानिकारक होता है कि जिससे मनुष्य जाति को अत्यन्त दुःख होता है । यह अन्य मनुष्यों को आवारा करता है । यह मनुष्य जीवन अधम हैं । ऋषि जीवन वह है कि जिसमें स्वार्थ सिद्धि कुछ नहीं होती, केवल औरों की भलाई के लिए जीवन भर प्रयत्न करना इसका स्वभाव होजाता है । अब मनुष्य जीवन के संमुख बुराई और भलाई रूपी दो मार्ग स्थित हैं । यदि मनुष्य अपने पग को बुराई की ओर बढ़ाएगा तो अधम जीवन की ओर आता जाएगा, यदि भलाई की ओर पग उठाएगा तो ऋषि की पदवी पाएगा । जितना २ भलाई की ओर झुकता जाएगा उतना ही बुराई को दूर भगाता जाएगा । बुराई की ओर आने से भलाई से दूर हो जाएगा, जैसे रेलगाड़ी एक स्टेशन को जितना २ छोड़ती जाएगी उतना ही दूसरे स्टेशन के समीप आएगी, किन्तु मनुष्य को ऐसा पवित्र जीवन बनाने के लिए इज्जत और बहानेबाज़ी छोड़ कर तपस्वी बनना पड़ता है इसीका नाम मृत्यु से पहले मरना है । उसका जीवन शोक दुःख और विपत्तियों से पृथक् रहता है यह निश्चयात्मक है कि जब मनुष्य जीवन में तप आ जाता है तो तप के प्रभाव से आत्मा काम आदि को दबा कर प्रबल हो जाता है फिर

उनका अनुचित प्रयोग न करने से आत्मिक बल प्रकट हो जाता है। आत्मिक शक्तियां उभर आती हैं उनके प्रकट होने से मनुष्य महान् मस्तिष्क वाला उच्च विचार वाला और साहस का पुतला बन जाता है। मस्तिष्क के सम्पूर्ण होने से अच्छे विचारों का उत्पन्न होना, साहस से उनके पूरा करने में निरन्तर प्रयत्न करना इसका स्वाभाविक गुण बन जाता है। जीवन और मृत्यु के नियम को ठीक २ समझ कर निर्भय रहना उसके स्वभाव में दाख़िल होजाता है। नियम है कि तप का जीवन मनुष्य को ऋषि की पदवी दिलाता है, मनुष्य को ऋषि बनने के लिए तपस्वी होना आवश्यक है। जो उपाय कामादि को दबा कर आत्मा के विजयी होने के लिए काम में लाए जाते हैं उनको 'तप' कहते हैं। जिस प्रकार सोना अग्नि का ताप खाकर कुन्दन बन जाता है और उसमें निराली चमकदमक जो पहले मैल से छुपी हुई थी निकल आती है ठीक इसी प्रकार से अन्तःकरण के मल विक्षेप से जो आत्मा अपने आपको निर्बल और सदोष मान बैठा था, तपोबल से मल को दूर करके सबल और निर्दोष होजाता है, उस समय आनन्द का स्रोत लहरें मारता है। नए जीवन का संचार उत्साह और पुरुषार्थ को उभारता है ऐसे जीवन में न कुछ करना और न कराना, न हारना और न हराना बुराई को उखाड़ना,

भलाई को पसारना, परोपकार करते हुए समय व्यतीत करना जीवन का उद्देश्य शेष रह जाता है। इसी अवस्था का दूसरा नाम 'मुक्त जीवन' भी है। अब इस विचार को यहां ही छोड़ कर दूसरी तरह विचार से काम लें तो पता लगेगा कि ऋषियों का उपदेश कैसा सुखदायक था, यद्यपि संस्कृतसाहित्य बड़ा ही गंभीर और पूर्ण था किन्तु उस पर लगातार आघात होने से कौन २ सी पुस्तकें जिनमें अनेक विद्याओं का पूर्ण रूप से वर्णन किया गया था लुप्त हो गई, इसका ठीक २ पता लगाना हमारे यत्न से बाहर है। किन्तु दर्शन आदि जो कि वेदों के ईश्वरीयज्ञान होने में साक्षीरूप में स्थित हैं यदि उन दर्शनों के दर्शन होते तो वेदों को ईश्वरीयज्ञान कहने में भारतवासियों को पूर्ण संकोच होता, इन ऋषिप्रणीत दर्शनों में जीव, ईश्वर और प्रकृति के सम्बन्ध में प्रबल युक्तियों से विचार किया गया है। यद्यपि आजकल के विद्वान् दर्शनों के मर्म समझने में रूप से समर्थ नहीं किन्तु फिर भी जो मनुष्य अपनी बुद्धि से उनका विचार करता है उसका मन उन महानुभावों के सन्मान और आदर का घर होजाता है। दर्शनों के विचार से उनकी उदारता, परोपकारिता और सदाचार के विचार के भावों का ठीक २ पता लग जाता है। उनके पढ़ने और उनके अनु-कूल अनुष्ठान करने से मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म्म को जो इसके पूर्णानन्द का कारण है समझ जाता है। फिरः—

खुल गया जिस पे राज़े पिनहानी।
हेच समझे वह ऐश सुलतानी॥

का चिन्तन करता है।

संस्कृतसाहित्य में दर्शनों के दर्शन उसके गौरव और प्रतिष्ठा के कारण हैं। यद्यपि वेद ईश्वरीयज्ञान और सर्वविद्याओं के जो कि मनुष्य को उपयोगी हैं ख़ज़ाने हैं तो भी बुद्धि को सूक्ष्म करके वेदों के ठीक २ अर्थ समझने का साधन दर्शनों के विना दूसरा नहीं मिलता।

"हरचे वकामत केहतर वकीमत वेहतर"

जिस प्रकार हीरा आकार में छोटा और मूल्य में बड़ा होता है ठीक उसी तरह ऋषियों ने अपने तप के प्रभाव से समाधिस्थ होकर वेदमूलक छोटे २ सूत्रों का प्रकाश किया है।

ईश्वर, जीव और प्रकृति के विषय में कोई प्रश्न ऐसा नहीं छोड़ा जो हल न कर दिया हो। उपनिषदों और दर्शनों के विचार से मनुष्य का संदेह और दुःख शोक दूर होजाता है। उन प्राचीन ऋषियों को जो भारतवर्ष में स्थान २ पर अपने उपदेशों से सन्तप्त अन्तःकरणों को शान्त करते थे ध्यान में नहीं ला सकते हैं तो वर्तमान काल में महानुभाव ऋषि दयानन्द जी महाराज के विचित्र चरित्र पर रौशनी डालें और लाभ उठाएं।

शिक्षा—ब्रह्मचर्य्य का पालन करते हुए विद्या के

प्राप्त करने के अनन्तर जब ऋषिकृत ग्रन्थों का स्वाध्याय किया तो ऋषि को यह विदित हो गया कि पाखण्ड प्रपंच ग्रन्थों के बढ़ जाने से आर्ष सिद्धान्त जिनका वेदों के साथ सीधा सम्बन्ध है दब चुका है जिस प्रकार वर्षा-ऋतु में घास के उत्पन्न होजाने से पगडण्डी का पता नहीं चलता, जिसके समझे बिना मनुष्य सीधे मार्ग से दूर होजाता है। यह जानकर कि ऋषि ने वेदों की रक्षा के लिए जिस प्रयत्न और पुरुषार्थ से काम लिया वह सब पर प्रकट है यदि आप भी वेदों की रक्षा करना चाहते हैं तो ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के पढ़ाने का प्रबन्ध करो बिना इनके वेदों की रक्षा नहीं हो सकती और बिना वेदों की रक्षा के हम सुरक्षित नहीं रह सकते।

(२) इस विषय में ऋषि का विचार बड़ा ही स्थायी और दृढ़ था और उनको पूर्ण विश्वास था कि मनुष्य को धार्मिक बनने के लिए सच्चरित्र होना आवश्यक है। जब तक मनुष्य सदाचारी न होगा, तब तक उसके अन्तःकरण में धर्म का चित्र खिंच ही नहीं सकता। इन दोनों का सम्बन्ध घनिष्ट सम्बन्ध है इसमें सन्देह हो ही नहीं सकता, कि जो मनुष्य चाल चलने से ठीक नहीं वह धर्म्महीन अवश्य होगा। इन दोनों की अनुपस्थिति में मनुष्य पुरुषार्थहीन मति मलीन होकर अपने नाश का कारण बन जाता है। सच कहा है:—

पुरुषार्थ नहीं जिस पुरुष में, वह पुरुष पुरुषाकार है।
पुरुषार्थ बिना इस पुरुष के, जीवन पै शत धिक्कार है॥

आप इनके जीवन से शिक्षा लें और पुरुषार्थी बनने का यत्न करें, बिना इसके कोई भी काम धार्मिक हो वा व्यवहारिक चल नहीं सकता।

(२) निष्काम-भाव से ऋषि ने जो उपकार आर्य जनता पर किए हैं यदि विचार करें तो तन मन धन सब कुछ देकर भी हम मुक्त नहीं हो सकते। यह पचास वर्ष का समय जब से ऋषि ने उपदेश आरम्भ किया, आर्य जाति को मिटाने के लिए विचित्र शक्ति रखता था, और किसीको इसका भ्रम भी न था। ध्यान से सुनिए कि जब इंग्लिश-भाषा की उन्नति के समय साइंस ने ज़ोर पकड़ा तो उसकी युक्तियों और प्रमाणों के संमुख पौराणिक धर्म्म सिद्ध होने लगा। पौराणिक धर्म ही नहीं, प्रत्युतजितने मत ज़ारी थे सबमें खराबियां प्रतीत होने लगी। किन्तु आर्य्य जाति वैदिक सिद्धान्तों से अनभिज्ञ थी। बताओ किसका सहारा पकड़ते ईसाई मत या नास्तिकता की जंजीरों में जकड़े जाते इस भारी समूह के निकल जाने से शेष क्या रह जाता है, जिस साइंस के आगे दुनिया के मत लजाते और सिर न उठाते थे। जब ऋषि ने अपने तपोबल से वैदिक प्रकाश दिखलाया, तो जिस साइंस ने प्रचलित मतों के सिद्धान्तों को धमकाया था, वैदिक सिद्धान्तों के आगे अपने सिर को झुकाया।

बहुत से साइंस जानने वालों के मस्तिष्क (दिमाग) पर अधिकार पाया और उल्टे मार्ग पर जाने से बचाया। यह है ऋषि का तपोबल, हम इसके बदले में केवल वैदिकधर्म्म का प्रचार करने से ही मुक्त हो सकते हैं, पुरुषार्थ को धारो, धर्म्म को सुधारो।

(४) यह हमारे सौभाग्य का कारण है कि ऋषि संस्कृत के अतिरिक्त और कोई भी भाषा नहीं जानते थे, यदि थोड़ी अरबी फ़ारसी या इंग्लिश जानते होते, तो लोगों को यह सन्देह अवश्य होता कि यह संस्कृत की शक्ति नहीं, प्रत्युत इंग्लिश या फ़ारसी का बल है। ऋषि ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि जो विद्या नियमानुसार प्राप्त की जाए वह मनुष्य को प्रतिष्ठित बनाने का कारण होती है। नियमविरुद्ध विद्या प्राप्ति अज्ञानयुक्त होती है। इसमें प्रमाण यह है कि आज काशी में बहुत से विद्वान् वर्त्तमान हैं और धर्म्म मर्यादा की दुर्दशा उनके सामने उपस्थित है किन्तु कोई भी इस मर्यादा को स्थिर करने के लिए तय्यार नहीं। गिरी हुई धर्म्म की अवस्था का सुधार सदैव विद्वानों द्वारा ही हुआ करता है। विद्याहीन इस मर्यादा को स्थिर करने में निर्बल होते हैं। क्या कारण है कि पूर्ण विद्वान् होते हुए भी खामोश कर्तव्य फ़रामोश हो रहे हैं। कारण यह प्रतीत होता है कि विद्या के साथ आत्मिक बल मिल कर मनुष्य को परोपकार करने के लिए बाधित

करता है। आत्मिक बल के न होने से आलस्य और प्रयोजन सिद्धि की जंजीर में जकड़ कर परोपकार करना तो एक ओर, उल्टा मनुष्य जाति की हानि का कारण हो जाता है। आत्मिक बल के साथ मिल कर विद्या सीधा मार्ग बताती है, इसके न होने से अज्ञानता से बदल कर उल्टा मार्ग दिखाती और दुःख को बढ़ाती है। इसलिए ऋषि ने आत्मिक बलयुक्त होकर विद्या से काम लिया और अपने उद्देश्य को पूरा किया। उचित है कि हम लोग आत्मिक बल के साथ २ विद्या को ग्रहण करें और लोक उपकार के लिए तैयार हों।

(५) यह सत्य है, इसमें संदेह हो ही नहीं सकता, कि जब मनुष्य का मन बुरे विचारों का घर हो जाता है तो आत्मा निर्बल हो जाती है। शुभ विचारों के उत्पन्न होने से आत्मिक बल—जो मनुष्य शरीर में जादू का सा प्रभाव रखता है और जो मुक्ति का मुख्य हेतु है निकल आता है। ऋषि ने इस आत्मिक बल को कैसे बढ़ाया और इसमें आने वाली रुकावटें दूर करने में किन २ साधनों का प्रयोग किया। साधन शून्य मनुष्य किसी काम में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए किसी वस्तु को प्राप्त करने से प्रथम उसके कारण को प्राप्त करना होता है, अतः आत्मिक बल को प्राप्त करने के लिए स्वामी जी सदैव प्रयत्न करते रहते थे। एक

बार जब स्वामीजी महाराज सूर्य उदय से प्रथम स्नान करके यमुना के किनारे समाधि लगा कर बैठे थे उस समय एक स्त्री ने स्नान करने के बाद साधु जान कर सद्भाव से उनके पांव पर अपना सिर रख दिया। ठंडा कपड़ा पांव पर लगने से स्वामीजी की आंख खुल गई, क्या देखा कि सामने एक युवती स्त्री खड़ी है, देखने के बाद हाथ जोड़ कर कहा, "माता यहाँ से जाओ,"। इसके बाद आगे को होने वाला ऋषि दयानन्द क्या उपाय सोचता है कि यह वस्तु जो सामने से इस समय गुजरी है क्या मेरे ब्रह्मचर्य्य व्रत तोड़ने का निमित्त तो न हो जाएगी। क्या यह स्वप्न देखा है अथवा किसीने मेरी परीक्षा करने के लिए कोई निराला ढंग निकाला है क्या यह भ्रम है या सत्य है? क्या यह संस्कार प्रबल होकर मुझे दूषित कर देंगे अथवा मैं इसका कोई उपाय कर सकता हूं। हे प्रभु! आप कृपा करें, आप ही दया करें, विघ्नों को दूर करने में सहायता दें, इस प्रकार के अनेक विचार अन्तःकरण में लहरें मारने लगे। आखिरकार वीर, धीर, गंभीर उठा और शहर के बाहर होकर गोवर्धन की ओर चला। शहर से दो तीन कोस बाहर जंगल में एक मन्दिर जिसमें कोई मनुष्य नहीं रहता था देखा। वहां आंख बन्द करके पद्मासन लगा ईश्वर चिन्तन में मग्न हो गया। दो दिन और दो रात बीत

गए प्यास सताती है जल पीने का संकल्प नहीं करते, भूख का कष्ट सहते हैं किन्तु भिक्षा करने नहीं जाते, नींद आती है किन्तु सोते नहीं, ४० घंटे बीत जाने पर अपनी परीक्षा स्वयं ही करने लगे, वह चित्र युवती स्त्री का जो देखा था कोसों दूर हो गया, चारों ओर भूख प्यास और नींद का ही चित्र दृष्टि गोचर होने लगा।

उस समय जिस प्रकार एक भारी पहलवान (मल्ल) को पछाड़ कर एक मल्ल, किसी कठोर परीक्षा से पास होकर विद्यार्थी और शूरवीर रणभूमि को जीत कर लौटता हुआ प्रसन्न होता है, ठीक उसी प्रकार आगे को ऋषि की पदवी पाने वाला ब्रह्मविद्या का विद्यार्थी दयानन्द कामदेव को जीत कर महानुभाव दण्डी विरजानन्दजी की शरण में आता है, पूछने से जब यह वृत्तान्त विदित हुआ तो गुरुजी का अन्तःकरण प्रसन्नता का केन्द्र बन गया। आशा-लता जिसको निराशा की वायु निर्बल कर रही थी लहलहाने और फल लाने लगी। यह है विचित्र जीवनचरित्र जो हमको शिक्षा दे रहा है। सज्जन पुरुषो! जहां तक हो सके आत्मिक बल को धारण करो, यह बल प्रत्येक शरीर में छिपा हुआ है जो इसको निकाल लेता है वह संसार में कृतकृत्य होता है, नहीं तो सब प्रयत्न व्यर्थ और नष्ट होजाते हैं।

धर्म्म उपदेश ।

जब तलक मन की कुटिलता दूर न हो जायेगी,
तब तलक राहत न सूरत अपनी दिखलायगी ।
दुष्ट भावों ने हो जिसके मन को दूषित कर दिया,
दुष्ट मन की वासना कैसे मधुर फल लायगी ।
कौनसा वह पाप है जिसको न कर डालेंगे हम,
जब कि खुदगर्ज़ी हमारी हमको आ बहकायगी ।
ईशना के बंधनों में जो हैं व्याकुल रात दिन,
उनकी मर्यादा हमेशा धर्म को धमकायगी ।
स्वार्थी परस्पर में मिलकर कर नहीं सकते हैं काम,
स्वार्थ की मात्रा हमेशा फूट को फैलायगी ।
त्याग का उपदेश करते लोभ में जकड़े हुए,
ऐसी उलटी चाल मंजिल दूर करती जायगी ।
वैर की वृद्धि से वृद्धि ने तो दुःख उठा लिया,
उनकी सन्तान कब तलक मन से न इनको भुलायगी ।
द्वेष की अग्नि जला कर चैन से सोना कहां,
विकलता चढ़नेसे हरदम शांति घबरायगी ।
बांसके भिड़नेसे जब जंगलमें ज्वाला जल उठी,
देखना कुछ काल में सब भस्मसात बनायगी ।
जिसको अपनी लाभ हानि का न किंचित ध्यान हो,
ऐसी जनता औरों को कैसे भला समझायगी ।

दुष्ट दूई मनमें है अद्वैत का डंका बजे,
यह अन्धाधुन्दी कहां तक कहर न बरसायगी।
वेदों में विस्पष्ट यह आया है **मा विद्विषावहै,**
सह नाववतु सह नौ भुनक्तु यह श्रुति बतलायगी।
जब तलक वेदोंकी आज्ञा का न मनमें मान हो,
सदमे पै सदमा उठा आखों से आंसू बहायगी।
रहते हैं कर्तव्य के पालन में जो बेगम सदा,
लड़ने भिड़ने की अचानक उनमें आदत आयगी।
छोड़ दो कलह को मित्रों शांति की शरण लो,
सर्वथा फिर शांति आनन्द गायन गायगी॥

ईश्वर-भक्ति ।

भक्ति की आवश्यकता—सत्सङ्ग की महिमा सारे शास्त्रों ने गाई है जिससे जीवात्मा का जो भी क्षण सत्सङ्ग में व्यतीत हो जाए वही क्षण शुभ है । यद्यपि आज इस बात को जानते हुए भी हमने अपने जीवनों को अधिकतर सांसारिक कामों में लगाना ही धर्म समझा हुआ है, परन्तु प्राचीन समय में एक दो घंटे के लिए प्रत्येक पुरुष ईश्वर गुण वर्णन और विचार में समय व्यतीत करता था । जिस प्रकार हवन की महिमा है । प्रातःकाल का हवन अपनी सुगन्धि से धीमे २ वायु को पवित्र करता है, उसमें न्यूनता होने से सन्ध्या काल में फिर हवन किया जाता है इसी प्रकार प्रातः के सत्सङ्ग से वह अभ्यासी पुरुष सन्ध्या तक रंगे रहते थे । फिर सन्ध्या को सत्सङ्ग का और रङ्ग चढ़ाते थे । परमेश्वर का चिन्तन मनुष्य को सुख की ओर ले जाता है । वेदों का महत्त्व देखें, एक २ मंत्र जीवन को पवित्र करता है । जो ऐश्वर्य्य हम चाहते हैं उनका केन्द्र भी वेदमंत्र है ।

परमात्मा बतलाते हैं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान । इन तीन कालों की गति परमेश्वर में नहीं है । उसमें केवल वर्त्तमान काल है । परन्तु केवल वर्त्तमान क्यों ? बताइए, आपके साथ किस काल का सम्बन्ध है भूत का

अथवा भविष्यत् का ? जो भूत् हो गया वह गया और जो भविष्यत् है वह आकर वर्त्तमान बन जाएगा इसलिए वर्त्तमानकाल किसी दशा में भी अलग नहीं होता सदा ही "वर्त्तमान काल" का सम्बन्ध आपके साथ है परन्तु प्रतीत नहीं होता । इसी प्रकार परमेश्वर की सहायता आपके साथ है परन्तु तुमको प्रतीत नहीं होती । प्रश्न यह है कि वर्त्तमान को किस प्रकार जाने ? क्या चार घंटे दो घंटे अथवा एक घंटे को वर्तमान कहते हैं। नहीं ! यह "वर्तमान काल" कुछ और है । भूत् और भविष्यत् दोनों को अलग करने वाली शक्ति वर्तमान काल कहलाती है । ऐ संसार के मनुष्यो ! वर्तमानकाल की प्रतीति नहीं होती परन्तु वह है, इसी प्रकार परमेश्वर की सत्ता प्रतीत नहीं होती परन्तु तुम्हारे साथ बराबर विद्यमान है । दूसरी ओर बतलाया कि परमेश्वर सुख स्वरूप है कोई भ्रान्ति वहां नहीं । हम सुख चाहते हैं। सुख का केन्द्र कहां है ? वह केन्द्र वही परमात्मा है ! मुझे केवल उससे ही मांगना चाहिए क्योंकि उसमें कुछ देने की शक्ति है । जिसके पास कुछ नहीं वह मुझे क्या दे सकेगा ? यदि मैं भूखा हूं तो मुझे रोटीवाला ही रोटी दे सकता है । इसी प्रकार हम किसी और से सुख नहीं पा सकते परन्तु सुख के केन्द्र से ।

हमारी गति इस समय उल्टी हो रही है । परमेश्वर

से हम नहीं डरते और मनुष्यों से डरते हैं । जो लोग परमेश्वर से प्रेम नहीं करते वह संसार में पग २ पर डगमगाते हैं, क्लेश सहते और नाना प्रकार के दुःखों में फंसते हैं । दो आंख वालों से हम भय करते हैं परन्तु वह परमात्मा जिसकी सब ओर आंखें हैं जिससे छिप कर कोई काम नहीं किया जा सकता हम नहीं डरते ।

क्या आप कोई ऐसा काम कर सकेंगे जिसमें वर्तमानकाल न हो ? जिस प्रकार वर्तमानकाल साथ नहीं छोड़ता इसी प्रकार परमात्मा हर समय तुम्हारे साथ लगा हुआ है । देखो, वह तुमको देख रहा है अतः कोई बुरा काम न करना । स्मरण रखो, वह असंख्य आंखों वाला तुम्हें देख रहा है उससे डरो और किसीसे मत डरो । परमात्मा का भय लोगों को बुरे कामों से हटा देता है । जब बुरे काम हट जाते हैं तो फिर बुद्धि निर्मल हो जाती है ।

जातकर्म-संस्कार में सबसे पूर्व बालक के कान में 'ओं' शब्द कहा जाता है । लोग कहेंगे ऐसा क्यों करते हो ? बालक भला उसे क्या समझ सकता है परन्तु मृत्यु समय भी इसी 'ओं' को स्मरण कराया जाता है और कहा जाता है हे संकल्पित पुरुष ! शरीर से वियोग का समय है अब उसी 'ओं' का स्मरण कर जिसका पहले किया था । इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य जब तक जीवित रहे तब तक

'ओं' का स्मरण करता रहे। यह स्मरण अभ्यास से ही होता है। यदि आप अभ्यास करते रहें तो मृत्यु का मुकाबिला सहज हो जाता है, जैसे स्वामी दयानन्दजी ने शांति के शब्दों का उच्चारण करके प्राणों का त्याग किया था। यदि उस प्रभु की महिमा को न जानोंगे, यदि उसके नाम का जाप न करोगे तो स्मरण रक्खो तुम बुद्धिमान् नहीं कहला सकते।

महान् प्रभु की शरण लो—शरीर के साथ जीवात्मा का जो अब सम्बन्ध है इसे अत्यन्त उपकारक समझो और प्रभु भजन करो, यही तुम्हारे संग चलेगा इतना ही नहीं परन्तु जो लोग प्रभु स्मरण नहीं करते वे कृतघ्न हैं। कृतघ्नता संसार के सब पापों से बढ़ कर है। यदि एक पुरुष हमको १०) रु० की नौकरी देता है तो उसका दो कर जोड़ धन्यवाद करते हैं प्रत्युत जिसने हमारे शरीर के अमूल्य अंगों को दिया है उसका यदि आधा घण्टा स्मरण न करें तो हम कितने कृतघ्न होंगे? स्मरण रक्खो, कृतघ्न पुरुषों को संसार में कभी सुख नहीं हुआ। इसलिए प्रातः और सायंकाल में अपने आत्मा को उससे जोड़ो इससे तुम्हारे सांसारिक व्यवहार भी नहीं बिगड़ सकते। क्योंकि शास्त्र कहता है कि प्रातः ४ बजे उठ कर उसका स्मरण करो। किसका स्मरण? जिसके भीतर चारों वेद आजाते हैं, जिसने सारे

जगत् को रचा है। श्रुति कहती है कि जो लोग वेदों को पढ़कर प्रभु को नहीं पहचानते उनका वेद पढ़ने का लाभ ही क्या है ?

आप अपने आपको एक व्यायामशाला के ऊपर खड़ा देखो, दो मल्ल (पहलवान) उठते हैं। एक दूसरे को गिराना चाहता है अन्त को एक गिरा और दूसरे ने गिराया। गिराने वाले का मुख प्रसन्न है विजय ने उसके मुखड़े को कुरूप होते हुए भी सुन्दर बना दिया है। गिरने वाले के मुख का रंग उड़ गया है, यह क्यों ? आर्य्यपुरुषो ! एक का सम्बन्ध सफलता के साथ है दूसरे का असफलता के साथ। बतलाओ, तुम कैसा बनना चाहते हो, सफलता को प्राप्त होना चाहते हो अथवा असफलता को ! आप इस संसार रूपी अखाड़े में उतरे हुए हैं। अतः आओ, सिद्धि के मार्ग पर चलें। यदि हम आलस्य और शिथिलता में पड़े रहें तो सिद्धि कैसे मिलेगी। आज सांसारिक आनन्द और विषयवासनाओं में पड़ कर मृत्यु का भय मिटा दो परन्तु मृत्यु पीछा नहीं छोड़ेगी। धन उपार्जन करने वाले, विद्यार्थी अभियोग करने वाले के साथ मौत लगी है। एक २ क्षण, घड़ी २ दिन रात व्यतीत होने से हम मृत्यु के निकट होते जाते हैं परन्तु हमने उसे कभी विचारा नहीं।

शिकारी कुत्ते जिस खरगोश के पीछे लगते हैं तो

खरगोश थक कर झाड़ी में मुंह दे लेता है और समझता है कि कुत्ते चले गए । परन्तु कुत्ते नहीं हटते वे आ दबोचते हैं । इसी प्रकार यदि मृत्यु का चिन्तन नहीं तो मृत्यु हट नहीं जाती, वह आएगी और अवश्य आएगी । एक मनुष्य लाठी लिए मेरे पीछे भागा आता है, मैं बचने का यत्न करता हूं परन्तु कहां जाऊं ? वह मुझसे बढ़कर पराक्रमी है । मुझे ऐसे सहायक की आवश्यकता है जो मुझसे मेरे मारने वाले से अधिक बलवान् हो तब मैं बच सकता हूं, हमारे पीछे मृत्यु लगी हुई है । काल से बढ़ कर कौन बली है । क्या डाक्टर, महारानी विक्टोरिया को कई डाक्टर एक क्षण भी अधिक जीवित न रख सके । इस रोग का कोई वैद्य नहीं । परन्तु विचारो परमात्मा में मृत्यु की गति नहीं वह इससे ऊपर है जिसने उनकी शरण ली वह मृत्यु के पंजे से बच गया वह उसके बाहर निकल गया । जिसकी आज्ञा से अग्नि तपता है, जिसकी आज्ञा से सूर्य्य चन्द्र और पृथ्वी खड़ी है, मृत्यु भी उसकी आज्ञा से चलती है, उसकी शरण पकड़ो । फिर तुम्हारा कोई शत्रु न रहेगा । इसके लिए पहले अभ्यासशील बनो । उस मृत्यु से अधिक बली शरण देने वाले प्रभु का स्मरण करो और वह तुम्हें अपनी गोद में लेकर निर्भय कर देगा ॥

झूठे सांसारिक प्रेम का दृष्टान्त ।

एक २०-२२ वर्ष का युवक साधुओं के पास जाता है। साधु उसे कहते हैं, पुत्र ! तुम होनहार हो, संसार का उपकार कर सकते हो, घर को छोड़ कर संसार के उपकार में लगो। लड़का कहता है 'मैं पिता का एक ही पुत्र हूं, मेरे विवाह हुए अभी दो वर्ष हुए हैं, मेरा पुत्र अभी छोटा सा है, मैं भला कैसे जा सकता हूं। क्या यह पाप नहीं है कि इस प्रकार माता और अपने पुत्र आदि को छोड़ दूं ?। साधु कहता है पाप उसके लिए है जो घर से व्यभिचार करने के लिए निकलता है अथवा कोई पाप करने के लिए जाता है। पाप उसके लिए नहीं है जो संसार का उपकार करने के लिए निकलता है। वह लड़का फिर भी नहीं मानता और अपने माता पिता का हाल वर्णन करता है। साधु ने उसको प्राणायाम सिखलाया और कहा हम तुमको उसके प्रेम का परिणाम दिखलावेंगे। एक दिन उसको कहा कि तुमने किसी रोग का बहाना करना और फिर दूसरे दिन प्राण चढ़ा कर लेट जाना। उस लड़के ने ऐसा ही किया। और सांस चढ़ा कर मुर्दों की तरह लेट रहा, घर के लोग रोने पीटने लगे, हाहाकार मच गया, लोग भी सहानुभूति प्रकट करने को आए और कहने लगे 'हाय शोक ! माता पिता का एक ही लड़का चल बसा'। उस साधु ने भी यह

समाचार सुना और लड़के के घर आकर उसके माता पिता को कहने लगा, हे गृहस्थियो! रोना बन्द करो, ठहर जाओ, मैं तुम्हारा पुत्र जीवित कर सकता हूं। साधु ने झूठ ही कुछ पढ़ना आरम्भ किया और फिर दूध मंगवा कर उसके पास रख दिया और कहा यह लड़का तब जीवित हो सकता है यदि इसका कोई प्यारा मित्र, माता पिता, बहन-भाई, स्त्री या पुत्र दूध को पीले! परन्तु जो भी इस दूध को पियेगा वह मर जाएगा।

अब बारी २ सबको दूध के लिए कहा जाता है परन्तु उसके सारे सम्बन्धी कोई न कोई बहाना करके टाल देते हैं। मित्र! यह दृश्य देख कर पहले ही खिसक गए कि कहीं हमें न दूध पीने को कहा जाए। जब यह दशा हुई, साधु ने ऊंचे स्वर से कहा "हे सम्बन्धियों की झूठी प्रेम शृंखला में बंधे हुए! देख और ध्यान से देख कि वे तुझको कितना प्रेम करते हैं और तू उनके लिए सारे संसार को अलग किए बैठा है, अब उठ बैठ और उनका परित्याग करके संसार का उपकार कर"। लड़का उठ बैठा और उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। शास्त्र कहता है धर्म के विरोधी माता पिता को छोड़ दो॥

हमारे जैसे सहस्रों कायर पापी निरर्थक हैं एक ही यत्नवान् उपकारी जीव बेड़ा पार कर देगा। यदि अपने

आपको बलवान् बनाना चाहते हो तो ईश्वर-भक्ति में दृढ़ चित्त हो जाओ।

बल धर्म में है—ईश्वर भक्त चने की रोटी खाएगा पाप नहीं करेगा, हम दूध माखन खाकर भी दुर्बल होते जाते हैं। मनुष्यो! बल दूध माखन में नहीं प्रत्युत भक्ति और कर्त्तव्य पालन में है। जो लोग अपने धर्म पालन में सिंह की न्याई सीधे तैरते हैं वे मृत्यु यदि संमुख खड़ा हो तो भी आगे जाने से नहीं झिझकते। धर्म सहायता करता है परन्तु केवल धर्म २ पुकारने से नहीं। धर्म ने उस समय तुम्हारी सहायता करनी है जब पुत्र धन, राज्य और महलों से आपको धर्म प्यारा होगा। धर्म से हंसी ठट्ठा न करो। मनुष्य कहलाते हुए मन में गिरावट, पग २ पर बुराई? भाइयो! छोड़ दो इन बातों को। अपने परिवार में बैठ कर प्रतिदिन धर्म का चिन्तन करो। अफलातून ने देखा कि एक पुरुष पागलों के पीछे जाता है। अफलातून ने इस पुरुष को बुलाया और कहा कि आप तो विद्वान् और बुद्धिमान् प्रतीत होते हैं, आप अपने मास्तिष्क का इलाज कर लें, आप पागलों के पीछे क्यों घूमते हैं। उसने कहा, मेरा मास्तिष्क ठीक है, मैं केवल उनकी चाल ढाल देखता हूं क्योंकि यह मुझे भली लगती है। अफ़लातून ने पूछा कितने दिन ऐसा करते हो गए? उसने कहा, दस दिन। अफलातून ने कहा,

तुम आधे पागल होचुके हो अब दस दिन के पीछे पूरे पागल हो जाओगे। विचारों का प्रभाव मस्तिष्क पर बड़ा गहरा पड़ता है जो जिसका विचार अथवा चिन्तन करेगा वह वैसा ही बन जाएगा। वह परमात्मा की भक्ति को सुन कर इस कार्य्य में लग न जाएंगे तो जान कर वह दुःख मार्ग पर अपने आपको डाल देंगे। इसलिए प्रति दिन एक आध घण्टा प्रभु का चिन्तन किया करो, इससे अपने आपको और सारे संसार को सुखी कर देंगे। उस समय तुम्हारा कुछ धन अपनी क्षुधा निवारण के लिए और शेष का धन धर्म प्रचार के लिए होगा तुम्हारी विद्या तुम्हें सीधे मार्ग पर ले जाएगी। औरों को पथ दर्शाएगी। जो ऐसा करेगा वह प्रभु का प्यारा बनेगा नहीं तो पूछा जाता हैं और पूछा जारहा है:—

कभी तू काम भी आया किसी दुखिया दरिद्री के।
जगत में आन कर तूने किसीसे क्या भलाई की॥
भलाई कर बदी को त्याग दो धर्म्मी बनो प्यारे।
जहां तक हो सके सेवा करो सब प्राणी मात्र की॥
भलाई कर कि वह तुमको भले कामों का फल देगा।
तेरी झोली वही आशा के फूलों से भर देगा॥

सुख की प्राप्ति।

"सुख प्राप्ति" के विषय को स्पष्ट करने के लिए मैं इसे छः श्रेणियों में विभक्त करता हूं। सुख की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? प्रत्येक मनुष्य और प्राणि-मात्र इसीके लिए यत्न कर रहा है परन्तु जिस सुख की इच्छा है मनु जी उसका लक्षण इस प्रकार करते हैं। "सर्वम् परवशम् दुःखम्" पराधीनता दुःख है और स्वाधीनता सुख। आजकल जिस स्वाधीनता की ओर लोगों की रुचि हो रही है मेरा संकेत उसकी ओर नहीं। पराधीनता में किस प्रकार दुःख है उसको मैं एक दृष्टान्त से समझाता हूं—गायन में आपको बड़ा आनन्द आता है आप देखें कि इसमें कितनी पराधीनता है। सबसे पूर्व बाजे की आवश्यकता फिर बजाने वाले की, यदि बाजा और बजाने वाला दोनों मिल गए आपने एक घण्टा भर सुना मन भर गया दिल उचाट हो गया। आपने कहा, बंद करो इस झगड़े को, हमें नींद आ रही है। इसलिए मनु जी कहते हैं कि इन्द्रियों के विषय में सुख नहीं है। इन्द्रियों के प्राप्त किए सुख में पराधीनता है। प्रत्युत पूर्ण आनन्द परमेश्वर जो आदि से आपके सङ्ग है और सदा रहेगा उसी की प्राप्ति ही सच्चा सुख है और इसी सुख में स्वाधीनता है।

सुख प्राप्ति के भाग—मनु जी लिखते है कि कारण और कार्य्य का जो सम्बन्ध है और जो उसकी गहराई को न समझेंगे वे कभी सफलता को प्राप्त न होंगे। जैसे एक पुरुष को दही की आवश्यकता है। परन्तु वह नहीं जानता कि दही किस प्रकार बनता है वह कभी आटे और पानी को मिलाएगा और कभी किसी और वस्तु को। परन्तु जो जानता है वह तुरन्त दूध लेकर दही जमाएगा।

सुख एक साध्य वस्तु है। इसके साधन क्या हैं? इनको जानने की आवश्यकता है। सुख के पार्सल बाहर से नहीं आया करते यह तुम्हारे अन्दर भरा पड़ा है, और इसके साधन भी तुम्हारे भीतर विद्यमान हैं। ऋषि कहते हैं "प्रीतिपूर्वम् सुखम्" जहां प्रेम है वहां सुख है। प्रीति दुकानों पर नहीं बिकती, यह भी तुम्हारे अंदर ही है। प्रीति की प्राप्ति का साधन विश्वास है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं "विश्वास चोरु का प्रीति" जहां विश्वास है वहां प्रीति है। विश्वास के बिना प्रीति नहीं हो सकती। विश्वास कहां है? वह भी आपके हृदय मंदिर में विद्यमान है। परन्तु यह उत्पन्न कैसे होता है? शास्त्रकार कहते हैं "सत्यमूलको विश्वासः" जहां पर सत्य है वहां पर विश्वास है। अब यह कैसे जानें कि यह सत्य है इसके लिए विद्या की आवश्यकता

है। इसी लिए तो कहते हैं कि "विद्या बलवती भवति" विद्या बल के देने वाली है। अब इस कठिनता की व्याख्या होगई अर्थात् विद्या ने सत्य को, सत्य ने विश्वास को उत्पन्न किया, विश्वास से प्रीति हुई और प्रीति से सुख प्राप्त होगया, यही हमारा साध्य है और इसी विषय पर मैंने आपके प्रति कुछ वर्णन करना है।

"प्रीति" सबसे पूर्व हम प्रीति को लेते हैं। संसार में जितना काम हो रहा है वह सब प्रीति और प्रेम के आधार पर है। एक समय था कि मिट्टी अपनी यथार्थ दशा में थी, पानी मिला कर ईंटें बनाई गई। अब ईंटें पृथक् २ हैं, कोई काम इनसे नहीं लिया जा सकता परन्तु जिस समय कारीगर ने इन पर गारा और चूना जमा दिया वे पृथक् २ ईंटें मकान के रूप में हो गई। यही प्रीति का काम है। जैसे दो ईंटों के मध्य में चूने और गारे ने काम किया इसी प्रकार जिस सभा में बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धि और प्रेम रूपी गारे को काम में लाते हैं उन सभाओं की उन्नति होती है। जिस प्रकार दर्जी सूई और धागे से वस्त्रों को जोड़ देता है इसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपनी बुद्धि की सूई से सभा को यथार्थ स्थान पर पहुंचा देते हैं।

अब दूसरी दशा पर विचार करें, गाने वाला राग आलापता है यदि तबला अलग हो और हारमोनियम

की स्वर ठीक न हो तो आनन्द नहीं आता। यदि तबला और हारमोनियम का विरोध निकाल दिया जाए तो सबको आनन्द आता है। अपने शरीर को ही ले लीजिए, शरीर में वायु, पित्त, कफ हैं। इनमें से यदि कोई भी न्यूनाधिक हो तो मनुष्य रोगी होजाता है तीनों के मिलाप से ही स्वास्थ्य है। परस्पर मेल मिलाप संसार को चला रहा है 'अनुव्रतः पितुः पुत्र' वेद कहते हैं कि पिता के अनुकूल पुत्र हो, पति के अनुकूल पत्नी हो, भगिनी के साथ भगिनी की प्रीति हो, गुरु के साथ शिष्य का द्वेष न हो, भाई २ के साथ शत्रुता न करे। परन्तु हमारे यहां सब बात ही विपरीत हो रही है। एक कवि ने कहा है:—

नहीं है प्रेम की भारत में सुगंध,

इसी कारण है फैली इसमें दुर्गंध।

दूसरा वेदमंत्र बतलाता है "सह नाववतु सह नौ भुनक्तु" परमात्मा उपदेश करते हैं, हे मनुष्यो! तुमको उचित है तुम मिल कर एक दूसरे की रक्षा करो, कभी परस्पर द्वेष न करो, लड़ाई झगड़ा तुम्हारे निकट न आए। भला इन वेदमंत्रों का निरादर करके कौन शक्ति है जो जीवित रह सके। अतः यदि अपने जीवन को स्थिर रखना चाहते हो तो परस्पर प्रीति बढ़ाओ।

२. विश्वास–विश्वास प्रीति का मूलकारण है। जिस के अन्तःकरण में विश्वास नहीं होता, उसमें जागृति नहीं आ सकती। बद्रिनाथ की कठिन घाटियों पर चढ़ना सुगम नहीं। परन्तु एक वृद्ध स्त्री जिसके मन में विश्वास है वह बड़ी फुर्ती के साथ चढ़ जाती है। विश्वास हिन्दुओं में कूट २ कर भरा हुआ है परन्तु हिन्दुओं में सत्य नहीं इसलिए इसका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। दूसरी ओर आर्य्यसमाज में सत्य है परन्तु श्रद्धा और विश्वास नहीं। गुरुकुल के उत्सव में जाने वाले यात्रियों को दो मील पत्थरों पर चलना पड़ता है परन्तु कई लोग कहते हैं इस बार बड़ा कष्ट हुआ, अब न आएंगे परन्तु इसके प्रत्युत बद्रिनाथ की घाटियों पर चढ़ने वालों में कितनी श्रद्धा है, शत २ मील पैदल चले जाते हैं परन्तु श्रद्धा में कोई भेद नहीं पड़ता इसलिए आवश्यकता है कि या तो हिन्दुओं का विश्वास आर्य्यों में आजाए या आर्य्यों का सत्य हिन्दुओं में चला जाए तब ही दोनों को सफलता प्राप्त होसकती है।

३. सत्य–विश्वास सदा सत्यवादियों का होता है। झूठे पुरुषों का संसार में कोई विश्वास नहीं करता। एक भांड नकल किया करता था उसके पैर में पीड़ा होने लगी, पीड़ा से वह बहुत व्याकुल होगया परन्तु लोगों ने समझा कि यह अब भी नकल ही कर रहा है। किसीने

विश्वास न किया। किसी मनुष्य तथा किसी सम्प्रदाय का जीवन तब ही है जब तक उसका विश्वास है, विश्वास गया और जीवन नष्ट हुआ। इसलिए विश्वास को स्थिर रखने के लिए "सत्य की आवश्यकता है" परन्तु सत्य और एक मन्तव्य॥

४. विद्या—के बिना नहीं हो सकता। पंजाबी में एक कहावत है "सौ स्याने एक मत्त" विद्वानों का एक मत होता है।

अकबर ने इस सत्यता की परीक्षा के लिए बीरबल से कहा। बीरबल ने कहा कि आप सारे मन्त्रीमंडल तथा अन्य विद्वानों को आज्ञा दें कि रात्री के समय प्रत्येक पुरुष एक लोटा दूध का अमुक हौज़ में डाल दें। सारे विद्वान् थे। सबने यही विचारा कि जब सब दूध डालेंगे तो मेरे एक जल के लौटे से कुछ प्रतीत न होगा इस विचार का परिणाम यह हुआ कि जब अकबर हौज़ देखने गया तो हौज़ जल से भरा था उसमें दूध का नाम न था। उस समय बीरबल ने कहा, देखो, महाराजा सारे विद्वानों का एक मत होता है। यह एक कथा थी, इसको जाने दें। क्या आप नित्य प्रति नहीं देखते कि जब एक परीक्षक श्रेणी को प्रश्न का उत्तर देने की आज्ञा देता है तो जो विद्यार्थी ठीक उत्तर देते हैं उनका उत्तर एक होता है। परन्तु जो अशुद्ध उत्तर देते हैं उन में से

प्रत्येक का उत्तर भिन्न २ होता है । संसार में जितनी भूल बढ़ेगी उतने ही मत बढ़ेंगे ।

वेदों में सत्यता है । उपनिषदों से पूर्व जब वेदों का काल था शतशः ऋषि विद्यमान थे । यदि १०-१० ऋषि भी एक मत निकालते तो कई मत प्रचलित हो जाते परन्तु हम देखते हैं कि उस समय एक वेदोक्त मत का प्रचार था । ज्यों ही वैदिकधर्म्म शिथिल हुआ हज़ारों मतमतान्तर होगए ।

सूर्य्यरूपी स्वाभाविक लैम्प के विद्यमान होने से किसी और लैम्प की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु ज्यों ही सूर्य्य अस्त हुआ लोगों ने अपने दिये जलाए । किसी ने तैल का दिया किसी ने गैस लैम्प जलाया यह क्यों ? केवल इसलिए कि परमात्मा का सूर्यरूपी लैम्प विद्यमान नहीं । अब इस रात्रि के समय यदि आप किसी को कहें कि अपना दिया बुझा दे तो वह लड़ाई को उद्यत होगा परन्तु ज्यों हीं सूर्य्य उदय होगा सब लोग अपने २ लैम्पों को बुझा देंगे उस समय किसीको कहने की आवश्यकता न रहेगी । इसी प्रकार आप लोगों को ईसाइयों और यवनों से लड़ने झगड़ने की आवश्यकता नहीं वैदिकधर्म्म के नियमों को उच्च कर दो अपने धर्म को सारे संसार में फैला दो, सारे मतमतान्तर स्वयं दूर हो जाएंगे । जिस प्रकार सूर्य्य के संमुख छोटे २ लैम्प

कोई स्थान नहीं रखते इसी प्रकार वैदिकरूपी सूर्य्य के सामने इन मतों की कोई स्थिति न रहेगी।

ऊष्ण-ऋतु में जब कि स्वाभाविक वायु की न्यूनता होती है, लोग पंखे हिलाते हैं। परन्तु शीत-ऋतु में जब कि स्वाभाविक वायु अधिक होती है कोई मूर्ख से मूर्ख भी पंखे की वायु सेवन करने को उद्यत नहीं होता इसलिए जिस समय वैदिकधर्म रूपी वायु का ज़ोर होगा कोई भी इन कृत्रिम पंखों को न चाहेगा॥

उपदेश का फल क्यों नहीं होता ?।

लोग कहते हैं कि हम तो उपदेश सुनते २ थक गए हैं निःसन्देह आपका थकना आवश्यक है जिस तरह एक एन्ट्रेंस का विद्यार्थी बारम्बार अनुत्तीर्ण होने पर अपने अध्यापक को कहता है कि मैं तो यह कोर्स रटते रटते थक गया, परन्तु अध्यापक उसे परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं करता। ठीक इसी प्रकार हम उस विद्यार्थी की न्याई अनुत्तीर्ण हो रहे हैं और कहते हैं कि हम थक गए। अब ग्रामनिवासियों में प्रचार करके उनको उपदेश सुनाओ। भला कहो तो सही कि जिस उपदेश से तुम थक गए हो वह न थक जाएंगे ? जब यह उपदेश तुमको कोई लाभ नहीं पहुंचा सका तो उससे उनको क्या लाभ होगा ? जब मैं नवीन वेदान्ती था तो मेरे गुरु स्वामी शिवप्रसाद प्रतिदिन यही रटते थे कि 'रज्जु से

सर्प का भ्रम होता है,' परन्तु लोग दूर २ से आकर उन के इस उपदेश को श्रवण करते थे । यहां तो यह दशा है कि सात दिन पीछे समाज-अधिवेशन होता है परन्तु हम लोगों को उसमें भी सम्मिलित होने का अवकाश नहीं मिलता, हममें धर्म्म के लिए श्रद्धा का लेशमात्र नहीं है । जब गौ के आगे घास डाला जाता है तो पहले जल्दी २ उसे खा जाती है उसके पीछे धीरे २ जुगाली करती है । यही जुगाली उसके पालन पोषण और उसके दूध का कारण होती है इसी प्रकार उपदेशों सुन लेना घास को जल्दी से खा लेना है परन्तु इसका नित्य प्रति चर्चा करना और उसको मनन करना ही जुगाली करना है । उपदेशों से मन इसलिए उचाट हो जाता है कि हम उनका मनन नहीं करते । सत्य की सदा जय है और यही सीधा मार्ग है परन्तु इसपर अधिकार जमाना बड़ा कठिन है, विद्या के बिना सत्य पर अधिकार नहीं जम सकता । इसलिए ब्राह्मणों ने विद्या को ग्रहण किया । वह धन की ओर नहीं झुके । उन्होंने राज्य नहीं लिया । आपके पास १०००) है आपका मन चाहता है कि इसमें से ५००) गुरुकुल को दे दें आपने दे दिए अब आपके पास तो ५००) की न्यूनता होगई परन्तु विद्या एक ऐसी वस्तु है कि जितना इसपर दान करो उतनी ही बढ़ती है इसलिए परमात्मा ने

पहले चार ब्राह्मणों को उत्पन्न किया। ब्राह्मण होंगे तो क्षत्रिय वैश्य वह स्वयं उत्पन्न कर लेंगे, परन्तु क्षत्रिय ब्राह्मण उत्पन्न नहीं कर सकते। एक कथा है कि एक बार सिकन्दर और अरस्तु सफ़र में निकले, मार्ग में एक समुद्र पड़ा, जो बहुत वेग में था। अरस्तु ने सिकन्दर को कहा कि पहले आप नैय्या में बैठ कर पार हो जाएं फिर मैं आजाऊंगा। परन्तु इस बात को सिकन्दर न माना और पहले अरस्तु को भेज दिया। जब दोनों एकत्र हुए तो अरस्तु ने कारण पूछा। सिकन्दर ने उत्तर दिया कि अरस्तु सिकन्दर को उत्पन्न कर सकता है परन्तु सिकन्दर अरस्तु को उत्पन्न नहीं कर सकता। संसार में जितने आविष्कार हैं सब विद्या का बल है।

सदाचार—विद्या सदाचार से प्राप्त होती है। जिस विद्या के साथ सदाचार नहीं वह विद्या अविद्या में परिवर्तन हो जाती है। जिस प्रकार दूध में खटाई पड़ जाने से दूध फट कर अपनी यथार्थ दशा में नहीं रहता उसी प्रकार जिस विद्या के साथ सदाचार नहीं वह विद्या अपने स्वरूप को छोड़ देती है इसीलिए तो मनु ने विद्या के साथ तप को आवश्यक ठहराया है। दियासलाई से जहां हमें प्रकाश मिलता है वहां चोर भी अपने काम में इस से सहायता लेते हैं अब इसमें प्रकाश अथवा दियासलाई का दोष नहीं। विद्या के साथ शारीरिक बल की

बड़ी आवश्यकता है। परन्तु हमारी युवक-मण्डली की शारीरिक बल की यह दशा है कि यदि वायु सेवन की जाए तो भी बाईसिकल पर। आजकल धनवानों का सुख और व्यवहार (फ़ैशन) निर्धनों के लिए बड़ा दुःख-दायी हो रहा है। एक धनी चाहे वह निरक्षर ही क्यों न हो, कोट बूट पतलून पहन कर तत्काल स्टेशन पर चला जाता है और उसको कोई नहीं रोकता। परन्तु मेरे जैसा रङ्क चाहे उससे कितना विद्वान् हो अन्दर नहीं जा सकता। एक धनी के पड़ोस में निर्धन के बच्चे भूख से तड़प रहे हों परन्तु उसको दया नहीं आती वह बड़े आनन्द से घर में लेटा पड़ा है। प्रयाग के कुम्भ में बड़े २ साधुओं को जिनके पास पहले ही कम्बल और लोइयां होतीं हैं, धनी लोग उनको वस्त्र देते हैं। परन्तु वह निर्धन साधु जो शीत से तड़पते हैं उनको कोई नहीं पूछता।

भर्तृहरिजी कहते हैं कि सत्वगुणी पुरुषों के लिए मोक्ष का द्वार खुल जाता है। एक ही ज्ञान की बूंद उन मनुष्यों के लिए सुखमय बन जाती है जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया हैं परन्तु वही बूंद उनके लिए दुःखमय होती है जिन्होंने इन्द्रियों को नहीं जीता। एकान्त सेवन की शास्त्रों के बड़ी महिमा गाई है। भक्त लोग एकान्त सेवन को बहुत चाहते हैं, परन्तु चोरों को भी एकान्त

प्रिय है क्योंकि एकान्त में ही चोर अपने कार्य्य में सफलता को प्राप्त होता है। मैंने आपको बतलाया है कि विद्या तब ही सुखकारिणी हो सकती है जब वह यथाविधि नियमानुसार और सदाचारपूर्वक प्राप्त की जाए। संसार में मूर्ख इतना अत्याचार नहीं फैला सकते जितना कि सदाचाररहित विद्वान्। यदि एक मूर्ख मद्य पान करे तो लोग कहेंगे यह मूर्ख है उसको तो समझ ही नहीं। यदि कोई पढ़ा लिखा मद्यपान करता हुआ देखा जावे तो लोग उससे इसका कारण पूछेंगे वह अपनी निर्बलता को छिपाने के लिए मद्य के प्रति युक्तियां प्रस्तुत करेगा। सर्वसाधारण उसके फन्दे में फंस कर मद्य का सेवन आरम्भ कर देंगे संसार में अत्याचार फैलेगा। इसके प्रमाण में आप "महीधर" को देख लें जिसने अपने भाष्य के द्वारा भारत में मद्य मांस का प्रचार किया। परमात्मा करे विद्वान् आचारहीन न हों, क्योंकि संसार में अनुकरण विद्वानों का होता है मूर्खों का नहीं।

पण्डित गदाधर के विषय में राजा ने कहा कि यदि वह हमारे दरबार में आगया तो हम उसे १००००) रु० देंगे परन्तु वह अपनी विद्या में मग्न था। एक दिन खाने को कुछ न रहा तो उसकी स्त्री ने उसे दरबार में जाने की प्रेरणा की, वह घर से चल कर नदी पर आया।

और केवट को नाव चलाने को कहा, केवट ने पैसे मांगे, उत्तर दिया पैसे नहीं । केवट ने कहा कि ऐसा ही तू गदाधर है जो तेरे पास पैसे नहीं और राजा तुझे एक लाख रुपया देता है । गदाधर के मन पर चोट लगी फिर वह अपने घर लौट आया । जब राजा ने वृत्तान्त सुना तो उसने उसी समय लाख रुपया गदाधर के घर भेज दिया ॥

स्वामी दयानन्द से पूर्व काशी में शतशः बड़े २ पण्डित विद्यमान थे परन्तु किसीको देश की हीन अवस्था पर ध्यान न आया । परन्तु ऋषि दयानन्द देश की दुर्दशा देख कर तड़प उठा। विद्या को संस्कृत के विद्वानों ने स्त्रीलिङ्ग माना है इसका पति सदाचार है। विद्या और सदाचार के समागम से जो सन्तान उत्पन्न होती है उसका नाम ज्ञान और पुरुषार्थ है ।

एक कवि कहता है—

पुरुषार्थ नहीं जिस पुरुष में वह पुरुष वृथा आकार है ।
पुरुषार्थ विना उस पुरुष के जीवन पै शत धिक्कार है ॥

मैंने आपको बतलाया है कि सुख प्राप्ति के लिए सबसे पूर्व विद्या की ज़रूरत है । विद्या के साथ सदाचार आवश्यक है फिर विश्वास, विश्वास के साथ प्रीति और परस्पर प्रेम प्रीति का परिणाम सुख है यही आज मेरे व्याख्यान का विषय था जो मैंने समाप्त कर दिया ॥

अन्तिम निवेदन।

अभी आपको बतलाया गया है कि आर्य्यसमाज ने बड़े महत्व के काम किए हैं परन्तु अभी आदर्श स्थान बहुत दूर है और आप लड़ने झगड़ने लग गए हैं। ऋषि दयानन्द ने अपने विद्या बल से हमें हमारी निर्बलताओं से सूचित किया परन्तु हम फिर आलस्य और प्रमाद में पड़कर उन्हीं निर्बलताओं में फंस रहे हैं। क्या संसार में आप लोग यह बात प्रत्यक्ष नहीं देखते कि महान् पुरुष जो काम करते हैं छोटे उनका अनुकरण करते हैं? छोटी आर्य्यसमाजों ने आपका अनुकरण किया यदि आप परस्पर लड़ाई झगड़ा करते रहेंगे तो उन बेचारों का क्या हाल। आप सारे प्रान्त के प्रदर्शक हैं। आपके शुभ अशुभ कामों का प्रभाव सारे प्रान्त पर पड़ता है।

वैदिकधर्म का प्रचार तो होगा और अवश्य होगा और मेरा आज का कथन स्मरण रक्खो कि शताब्दि के पीछे सारे देश में वैदिकधर्म फैल जाएगा। परन्तु प्रश्न यह है कि इसको हम फैलाएंगे या कोई और? ऋषि दयानन्द का प्रचार केवल आर्य्यसभाओं तक संकुचित नहीं रहा परन्तु उनका उद्देश प्रत्येक सभा समाज में काम कर रहा है कुछ दिन हुए कि मैं अजमेर के उत्सव पर जा रहा था। गाड़ी में एक पादरी साहिब मिल गए। वार्तालाप में मैंने कहा कि पादरी जी आपकी पुस्तक

में लिखा है कि सूर्य चौथे दिन बनाया गया परन्तु दिन तब ही बनता है जब सूर्य पहले हो। पादरी ने उत्तर दिया कि चौथे दिन से आशय चौथे दरजे से है मैंने पूछा यह व्याख्या किसने की ? उत्तर मिला कि जिसने आपको युक्ति सिखलाई। उन्होंने कहा कि मत समझें कि दयानन्द केवल आपके थे ऐसे महान् पुरुष सबके होते हैं॥

इसलिए भाइयो। लड़ाई झगड़ा त्याग कर वैदिक धर्म्म के प्रचार में लग जाओ ताकि आने वाली सन्तान तुम्हारा अनुकरण कर सके।

ब्रह्मचर्य्य ।

प्रारम्भिक भूल—एक पुरुष ने वन में हरी २ घास में दियासलाई सुलगा कर फैंक दी, घास पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा । इस प्रकार के स्वभाव से प्रेरित होकर पुरुष ज्येष्ठ मास में सूखी हुई घास में दियासलाई फैंक देता है अब क्या ठिकाना है इस भूल से घास तो अब जल कर रहेगा । इसी प्रकार भारतनिवासियों से आरम्भ में भूल हुई है । पहली नींव क्या है ? 'ब्रह्मचर्य्य' इसको ख़राब कर दिया है । मनुष्य को अपने जीवन में ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम में से गुज़रना पड़ता है । ब्रह्मचर्य्य को प्रथम श्रेणी में क्यों रक्खा गया है ? इसलिए कि यह शेष तीन आश्रमों की नींव है, इसके बिगड़ने से सब बिगड़ जाएगा और इसके बनने से सब बन जाएगा । यदि एक राज किसी मकान की नींव में टेढ़ापन कर दे तो फिर कई इंजनीयर दीवार को सीधा नहीं कर सकेंगे । इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य में टेढ़ापन आजाने से और इसके दूषित होने से तीनों आश्रम ख़राब हो जाते हैं ।

ब्रह्मचर्य्य कितनी अमूल्य वस्तु है—ब्रह्मचर्य्य की महिमा वेदों ने बहुत गाई है । वेद कहते हैं कि यज्ञ निष्फल हो जाएगा यदि ब्रह्मचर्य्य का बल इसमें न

होगा । जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य से सुरक्षित होते हैं उनको वीर्य्य का लाभ होता है । वीर्य्य क्या है ? वीर्य्य शरीर में सातवीं धातु है । जो भोजन मनुष्य आज खाता है वह हृदय की अग्नि से पच कर ४½ दिन के पीछे रस बनता है फिर ४½ दिन के पीछे इस अग्नि पर पक कर रुधिर बनता है, उसके पीछे फिर अग्नि द्वारा ४½ दिन के पीछे वह रुधिर मांस बनता है फिर अग्नि लगने पर ४½ दिन के पीछे मेधा बनती है, इस मेधा धातु को फिर ४½ दिन अग्नि में तपना पड़ता है जिससे स्नायु बनता है फिर ४½ दिन पीछे अग्नि में तपने के पीछे हड्डी बनती है, ४½ दिन के पीछे आग में तपने से यह हड्डी मज्जा बनती है, और ४½ दिन के पश्चात् आग में तप कर वीर्य्य या शक्र बनता है । सांराश यह कि ३२ दिन के पीछे आज का खाया हुआ अन्न वीर्य्य के रूप में परिवर्त्तन होता है । लोग पैसों की अधिक पर्वाह नहीं करते जितना दुवन्नियों की, रुपयों की इनसे अधिक, और फिर यदि पौंड हों तो उनकी सबसे अधिक पर्वाह होती है, यदि हीरा हो फिर संभाल का क्या कहना । अब कहो जो वीर्य्य इतने परिश्रम से तैय्यार होता है उसकी रक्षा करनी चाहिए या नहीं ? आप एक आम को देखें उसके बीज को सात पर्दों के बीच संभाल कर रक्खा हुआ है, उसका प्रथम आवरण उसकी खाल है जिसके

अन्दर रस है, दूसरा वह है जिस भाग ने रेशों को पकड़ा हुआ है, जो तीसरा रस है चौथा पर्दा गुठली जो कठिन होती है इस गुठली को कठिनता से तोड़ दें तो इस संदूक के दोनों भागों के अंदर परदे लगे हैं इसके पीछे गुठली है जो कुछ कोमल होती है । फिर उसके अन्दर छोटे २ दाने हैं जिन के अन्दर आम उत्पन्न करने का पदार्थ है । किस रक्षा से इस बीज को रखा हुआ है, वह बीज यदि पका हुआ हो तो आम कैसा सुगंधि-युक्त और स्वादिष्ट होता है । इसी प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य्य है उसके मुख पर सौन्दर्य और शरीर में दृढ़ता होती है और वह बलवान् होता है ।

पुरुष कौन है—परन्तु जब पुरुष वीर्य्यहीन है तो फिर सुन्दर कैसे बने, काम किस प्रकार हो । जब तक शरीर में वीर्य्य का सञ्चार न होगा तब तक पुरुषार्थ न होगा, और जब तक पुरुषार्थ न होगा तो काम क्या होगा ? एक राजा एक ऋषि के पास गया और उससे कहा मेरी कन्या विवाह के योग्य है, मैं क्या करूं ? हर घड़ी शोकातुर रहता हूं । ऋषि कहते हैं राजन् ! किसी पुरुष के साथ इसका विवाह कर दो । राजा कहता है क्या अपुरुष के साथ भी कन्या का विवाह होता है यह आपने क्या कहा है ? ऋषि ने कहा, संसार में बहुत से पुरुष वास्तव में पुरुष नहीं होते

केवल पुरुष के रूप वाले होते हैं । मेरे कथन का तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष के अन्दर पुरुषार्थ है उसके साथ विवाह कर दो । ठीक है यह बात कि जो पुरुषार्थ का लाभ करता है वही पुरुष है और जिसके अंदर पुरुषार्थ नहीं है वह पुरुष नहीं है । वेदों में एक मंत्र आता है कि जिस समय ब्रह्मचारी गुरु के पास जाता है तो गुरु तीन रात्रि उसको गर्भ में धारण करता है उसका आशय यह है कि जिस प्रकार बालक माता के गर्भ में बैठा है माता के संस्कारों से अपने संस्कार बना रहा है परन्तु वह कोई चेष्टा नहीं कर सकता बिना अपनी बुद्धि के । अतः ब्रह्मचारी गुरु के पास इस प्रकार रहे जैसे गर्भ में है । आज आचार्य भी वैसे नहीं जो शिष्य ऐसा बनाएं और शिष्य भी नहीं जो ऐसा बन सकें । गुलाब की कली कितनी कठोर होती है परन्तु दूसरे दिन उसमें कोमलता आ जाती है तीसरे दिन और कोमल उसका मुंह खुल जाता है एक दिन व्यतीत होने के पश्चात् वह कली खिल जाती है और सुन्दर पुष्प बन जाती है । परन्तु यदि माली उस कठोर कली को हाथों से मल २ कर कोमल करे और एक आध घंटा के बल से उसकी पखंडियों को भी खोल ले तो निःसन्देह वह खिल तो जाएगी परन्तु न वह सुंदर होगी और न सुगंधि देगी

वह जल्दी ही मुर्झा जाएगी । इसी प्रकार जिन का ब्रह्मचर्य्य पूरा नहीं हुआ जो अपनी वृद्धि धीरे २ करके और वीर्य्य का सञ्चार करके नहीं बढ़े और उसको हाथों या गंदे भावों से तोड़ दिया है तो उनके मुख पर न लाली आती है और न उनके जीवन में मिठास होता है ।

स्मरण रक्खो जिस प्रकार भूगर्भ-अग्नि पृथिवी को एक स्थान पर ठहरने नहीं देती हर समय घुमाती और प्रत्येक समय चलायमान रखती है इसी प्रकार वीर्य मनुष्य के अन्दर यदि है तो उसे चालाक फुर्तीला और बलवान् बनाता है कभी निरुत्साही नहीं होने देता । वह कभी दरिद्री को देख कर आंख नहीं चुराता जिसके शरीर में वीर्य्य हो वह दुःखियों की सेवा करता है वीर्यहीन पुरुष के पास महान् आत्मा कैसे आ सकती है जैसी सामग्री डालोगे वैसी सुगन्धि आएगी । जो पुरुष दूसरे के दुःख में दुःखी होते हैं उनके विचार में कौनसा इंधन जलता है, देखो, यह इंधन वीर्य्य है जो इस वीर्य को अपने मस्तिष्क में जलाते हैं उनके संमुख सब वस्तु हाथ बांधे प्रस्तुत हो जाती हैं ।

ब्रह्मचर्य्य का साक्षात् आदर्श—ऋषि दयानन्द के विचार क्यों इतने पवित्र थे ? राजघाट कर्णवास में जाकर पूछो जब गोकुलिये गुसाइयों का वर्णन किया तो हर एक ग्राम का जिमींदार खड्ग लेकर सामने आया

स्वामीजी ने कहा क्यों आये हो ? उसने कहा कि आपने हमारा खण्डन किया है इसलिए आप को मार डालना चाहता हूं। स्वामीजी ने कहा कि यदि तू क्षत्रिय है तो किसी राजा को जाकर बाहुबल दिखला और यदि तेरा काम मुझे मारने से ही निकलता है तो मुझे मार ले । ऐसा उत्साहजनक उत्तर क्यों दिया गया ? इसलिए कि ऋषि के विचार, वीर्य्य का इंधन जलाने से बहुत पवित्र होगए थे । मनु जी ने लिखा है कि मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचारी होकर ही विवाह कर सकता है । यदि मनु जी का यह नियम आज प्रचलित हो तो हम सारे विवाह करने वाले दण्ड के अधिकारी होजाएं । पहले तो यह मर्यादा थी कि पहले पहलवान बनो और फिर अधिकार लो । परन्तु अब यह है कि अधिकार पहले दे दो फिर पहलवान बनेंगे । ब्रह्मचर्य्य की मर्यादा जाती रही । हमने इस अमूल्य वस्तु का आदर नहीं किया और अब सभी पश्चात्ताप कर रहे हैं ।

सिंहनी एक बच्चा देती है जो सारे वन के लिए बहुत है, क्यों ? इसलिए कि वह वीर्य्यवान् होता है । वीर्य्यहीन सन्तान, सन्तान उत्पत्ति को दृष्टिगोचर नहीं रखती विषय भोग को रखती है जिससे सन्तान बिगड़ जाती है । एक पुरुष प्रश्न करता है कि यह जो हीरा लाखों पौंडों से लिया है इसकी रक्षा क्यों करते हो

तो दूसरा उत्तर देता है कि इसे हथौड़े से तोड़ेंगे । इस प्रकार एक पुरुष ५०) तोले का इतर निकालता है और फिर उसे नाली में फैंक देता है तो आप इन दोनों को मूर्ख कहेंगे या नहीं ? परन्तु विचार करो और समझो कि क्या वह अधिक मूर्ख नहीं है जो वीर्य्य जैसे अमूल्य रत्न को इतर और हीरे की नाईं गंवा देता है ।

वीर्य्यवान् पुरुषों की आपने बहुत कथाएं सुनी होंगी । अरे ! सुन लीं कथा बहुतसी परन्तु सुनने से क्या होता है कुछ करो भी । स्वयं वीर्य्यवान् बनो । ध्यान रक्खो कि तुम्हारा यह अनमोल रत्न वीर्य कहीं चोरी तो नहीं होता, छीना तो नहीं जाता ? ऋषि ने एक स्त्री को देखा था तो दो दिन भूखे प्यासे जागते रहे और मन को सीधा कर लिया था । यह थे ऋषि । तुम क्या ऋषि बनोगे यह था वीर्य्यवान् । क्यों नवयुवको ! है तुममें साहस ? तुम एक सुन्दर बूट देख लेते हो और फिर खाट पर लेट कर कहते हो कहीं से रुपया आए तो बूट लें, घड़ी बेचें तो बूट लें, चोरी करें तो बूट लें, अरे ! क्यों नहीं मन को सीधा करते ? करे कौन वीर्यहीन भला कैसे कर सकता है ।

ब्रह्मचर्य्य की आवश्यकता—स्मरण रक्खो, कोई किसी को नहीं गिराता, मनुष्य अपने दुष्कर्मों से स्वयं गिर जाता है । आज बहुत कठिन समय व्यतीत हो रहा

है व्यसन बढ़ गए हैं इसलिए बड़े उद्योग की आवश्यकता है। एक ही व्यसन हो तो विपत्ति ले आता है। यहां तो ठिकाना ही नहीं। कितने तीव्र परिश्रम की आवश्यकता है इस उद्योग में सफलता प्राप्त करने के लिए वीर्य्यवान् बनने की आवश्यकता है। और गृहस्थ-आश्रम भी इससे शुद्ध हो सकता है। अब वानप्रस्थ आता है जब सन्तान की सन्तान हो जाए तो वानप्रस्थी बनने की आज्ञा है यह इसलिए होता था कि मेरे पुत्र को जिसने पढ़ाया है तो मैं भी किसी के पुत्र को पढ़ाऊं। वानप्रस्थी संसार की विद्वत्ता और महत्व बढ़ाने के लिए आवश्यक है। उसके पीछे संन्यास की वैसी आवश्यकता है जो शरीर के लिए शिर की है। वेदों ने बतलाया है कि संसार हमें अवश्य छोड़ना है चाहे प्रसन्नता से त्याग दें चाहे अप्रसन्नता से, इसलिए आश्रम का विधान था कि आप ही प्रसन्नतापूर्वक संसार को छोड़ दें और उसका भला करें। इसलिए यदि आप अपना और देश का भला चाहते हैं तो लग जाओ ईश्वर-भक्ति में और छोड़ दो संसार के बखेड़ों को।

'वैदिक धर्म की जय' उस दिन होगी जब इस कालेज से निकल कर सौ में से ५ लड़के संन्यासी हो जाएंगे। गुरुकुल में से बीस में से दो तीन हो जाएंगे और बिना गृहस्थ में प्रवेश किए संन्यास को धारण करके वैदिक धर्म

का प्रचार करेंगे । बतलाओ तो सही स्वामी विवेकानन्द विवेकानन्द कैसे बने ? उसी समय जब उन्होंने संन्यास आश्रम धारण किया । प्रचार तब होगा जब कालेज से लड़के बी० ए० पास करके संन्यासी बनेंगे और उनके माता पिता प्रसन्नता से कहेंगे कि हां पुत्रो ! जाओ, वैदिकधर्म का प्रचार करो । बुद्ध धर्म का प्रचार कैसे हुआ ? स्मरण रखो, राजा अशोक के पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री महेन्द्री की कथा जिन्होंने लंका में बुद्ध धर्म के प्रचार करने के लिए अपने आपका समर्पण किया और वहां जाकर बुद्ध धर्म सारे देश में फैला दिया । वैदिकधर्मियों सोचो तुम भी तो वैदिकधर्मी हो ? है तुम में कोई ऐसा राजकुमार और राजकुमारी, है कोई महेन्द्र और महेन्द्री ? वैदिक धर्म को ऐसे सच्चे वैदिक प्रचारकों की ज़रूरत है, ऐसे प्रचारक संन्यासी हो सकते हैं जिन्होंने शारीरिक शक्ति बढ़ाई हो, जिनके आत्मा बलवान् हो चुके हों । पूर्ण होगा उस दिन आर्य्यसमाज जब नवयुवक संन्यासी होंगे और कालेज से निकल कर बिना गृहस्थ में प्रवेश किए संन्यासी बन कर आर्य्यसमाज का काम करेंगे । आर्य्यसमाज में जो इने गिने संन्यासी थे वह भी कम हो रहे हैं एक दो वृद्ध संन्यासी रह गये हैं वह भी जाते रहेंगे । नवयुवको ? समझो और सोचो संन्यास की ओर झुको, वीर्य्यवान् होकर संन्यासी बनो, देखो, फिर कल्याण होता है कि नहीं ।

रोग की औषधि।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
योऽसावादित्ये पुरुषो ऽसावहम्॥

परमात्मा प्रतिष्ठित और ऊंचे हैं। जब कोई देश इस विचार को भूल जाता है तथा उसका विचार जागृत नहीं रहता तो हम उपद्रव होते हैं। जब यह विचार उपस्थित हो जाता है तो कोई उपद्रव नहीं होता। जो लोग कष्ट पाते हैं वही जगत् में मान और प्रतिष्ठा पाते हैं और सुख भोगते हैं यथार्थ और सत्य को वही समझ सकते हैं। संसार में सब प्रकार के पदार्थ हैं। परन्तु उनके लिए विचार का होना आवश्यक है जब तक विचार न होएगा उनके लाभ से वंचित रहेंगे। पहाड़ी लोग बिच्छुबूटी को जानते हैं। बिच्छु के काटने से पीड़ा होती है, उस जड़ी में ही उसकी औषधि प्रस्तुत है। यह लोग इसको जानते हैं इसलिए वह इसे मल लेते हैं। जब उसके विषय मे विचार न था कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे जिस प्रकार प्रकृति ने इस जड़ी की नींव में ही उसकी औषधि रख दी है इसी प्रकार दुःख की नींव में सुख है, औषधि है अतः यदि विधि जानोगे तो सारे पदार्थ प्रस्तुत भी होंगे अन्यथा दुःख उठाओगे।

१२ जानने योग्य पदार्थ—न्यायशास्त्र में आया

है कि परमात्मा की प्राप्ति और मोक्ष का यही एक साधन है कि मनुष्य इन १२ पदार्थों से परिचित हो—

आत्मा शरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृत्तिदोष प्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ॥

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय इन्हींके विषय बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, तथा अपवर्ग यह १२ जानने योग्य पदार्थ हैं।

समाचारपत्रों में गत दिनों यह चर्चा चली कि ऋषि दयानन्द निर्भ्रान्त थे अथवा भ्रान्त। यह भूल दर्शनकारों की ओर ध्यान न देने से हुई है। गौतम ऋषि कहते हैं कि उसकी मुक्ति में कुछ सन्देह नहीं जिस को पूर्ण और निश्चित ज्ञान होजाए। एक लड़के के लिए जितनी शास्त्री की पुस्तकें देखी हैं परीक्षक १२ प्रश्न बनाता है। उनका उत्तर उस लड़के से मांगता है। यदि उस लड़के ने १२ प्रश्नों का उत्तर भिन्न २ दे दिया तो चाहे पुस्तक में भ्रान्ति हो परन्तु उस लड़के की अनुत्तीर्ण करने का कोई कारण नहीं होसकता। अब यदि वह कहे कि मैं सब पुस्तकों को निर्भ्रान्त मानता और जानता हूं तो वह कह सकता। इसी प्रकार से वह योगी निर्भ्रान्त है जो १२ प्रश्नों अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय इत्यादि का पूर्ण रीति से ठीक २ उत्तर दे सकता।

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" जब चित्त की वृत्ति का निरोध होता है वह 'योग' कहलाता है। उस समय द्रष्टा (परमात्मा और जीव) अपने ज्ञान और परमात्मा के ज्ञान को पूर्ण रीति से जान लेता है। वृत्ति जब परमात्मा से तदाकार होती है उस समय ठहर जाती है बिना उसके नहीं ठहरती। समुद्र में चलने वाले जहाज़ दिन में चलते हैं दिन को तो उनको ज्ञान होता है परन्तु रात्रि के लिए उनके पास क़ुतुबनुमा होता है जो ध्रुव की ओर होकर पथ दर्शाता है। क़ुतुबनुमा की सुई ध्रुव की ओर होगी। यदि घुमा कर उसको हिलाओ तो यह हिल कर उसी ओर जाकर ठहरेगी अर्थात् ध्रुव की ओर निश्चल हो जाएगी अन्यथा चलायमान रहेगी। विज्ञानवाले कहेंगे कि वह कला इसी प्रकार बनाई है परन्तु योगी कहते हैं कि जब इसका सम्बन्धी ध्रुव निश्चल से है इसीलिए यह अचल है। इसी प्रकार चित्त की वृत्ति है यदि साकार के कामों में वृत्ति को लगावें तो चूंकि यह अचल है इसलिए वह नहीं ठहरती। यदि परमात्मा की ओर लगती है तो फिर वृत्ति ठहर जाती है परमात्मा की प्राप्ति होती है। प्रश्न यह है कि जब समाधि खुलने लगे तो तब क्या होगा, समाधि में क्यों सम्बन्ध होता है और इसके बिना क्यों नहीं होता ? व्यवहार में इसलिए नहीं होता

कि सांसारिक पदार्थों में उसको स्थिरता नहीं होती है उसको एक दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है जब मैं अपने संमुख दर्पण को घुमाता हूं उसमें मुख दृष्टि नहीं पड़ता। इसी प्रकार चंचल नदी में दृष्टि नहीं ठहरती परन्तु जब योग से समाधि में स्थिरता होती है तो उसमें वृत्ति ठहरती है व्यवहार में नहीं ठहरती क्योंकि कई संकल्प इसको चलायमान रखते हैं। योगी की वृत्ति समाधि के पीछे कभी बुरी वार्ता में न लगेगी इसलिए व्यवहार में भी उसको भूल न होगी क्योंकि इसी प्रकार उसने अपनी अवस्था बनाई है एक पुरुष ने दूसरे से कहा कि इस मकान की प्रत्येक वस्तु निकाल दो, दीपक लाकर उसने मेज़ कुरसी आदि सब चीज़ निकाल दीं। मकान के स्वामी ने आकर देखा तो मकान खाली था परन्तु भूल यह है कि प्रकाश द्वारा उन वस्तुओं को निकाला है इसलिए प्रकाश यहां विद्यमान है, आकाश को भी निकाल दो उस दशा में मकान शून्य होगा। इसलिए योगी कहते हैं कि चित्त की वृत्ति का निरोध करो। अर्थात् उसमें कोई किसी वस्तु का प्रवेश न होने दो, प्रत्येक वस्तु निकाल दो।

जिस समय मनुष्य समाधि में ममता अथवा स्वत्व को निकाल देता है और उसको पूर्ण ज्ञान होजाता है तो उसका नाम "सम्प्रज्ञानयोग समाधि" है। यह

शक्ति कब आएगी । स्वामीजी में क्यों थी ? आत्मा के साथ शरीर का सम्बन्ध रखा, शरीर यदि अशुद्ध है और आत्मा संस्कृत है पिछले कर्मों के कारण शरीर दुर्बल है और आत्मा सबल है तो आत्मा शरीर छोड़ देगा । यदि शरीर सबल है और पास धन भी हो परन्तु आत्मा असंस्कृत होए तो शरीर दुराचारों में लग जाएगा। इसी प्रकार यदि शरीर और आत्मा संस्कृत अथवा दोनों दुर्बल हों तो परिणाम उनके अनुकूल होगा । ऋषि में दोनों गुण थे अर्थात् बलवान् शरीर और बलवान् आत्मा । दोनों के मेल से क्या काम कर दिखलाया ? विचारणीय बात यह है कि दोनों का कितना गूढ़ संबंध है । आत्मा और शरीर में रथी और रथ का सम्बन्ध है।

दीवाली के दिन सब सफाई करेंगे परन्तु रात्रि को द्यूत (जूआ) खेलेंगे । मकान साफ़ है परन्तु उसका वासी पापी । जिन लोगों को मकान और उसके निवासी का ज्ञान न हो वह उन्नति नहीं कर सकते । दुःख दूर होकर सुख प्राप्त हो यह कैसे सम्भव हो सकता है ? परन्तु परमात्मा का सुख कैसे प्राप्त होए जिन बातों के करने से आत्मिक बल निर्बल होता है उनको तत्काल छोड़ दो । भारतवर्ष में कौनसी त्रुटि अथवा निर्बलता है, आर्यसमाज ने कौन २ बातें नहीं बताई दोषों को बतलाया और अच्छी बातों को भी बतलाया ।

अफ़ीमी ने अफ़ीम का स्वभाव डाला, कष्ट भोगता है परन्तु उसको छोड़ता नहीं दुर्व्यसन में जकड़ा गया है। विद्या का काम है जान लेना और जता देना। प्रकाश में यदि सर्प पड़ा है तो बतला देगा कि रस्सी नहीं सर्प है। यदि देखने वाले में बल है तो उसको पृथक् कर देगा। उसी प्रकार विद्या का काम है यह बतला देना कि कौनसी वस्तु गुणकारी और कौनसी अवगुण वाली, कौनसी लाभदायक और कौनसी हानिकारक? लाभदायक और हानिकारक के ग्रहण को विद्या आत्मिक बल के हवाले करती है। प्रति दिन देख रहे हैं कि सन्तानें निर्बल हो रही हैं, जाति में निर्बलता आरही है, समाज और पुरुषों में प्रेम प्रीति नहीं है फिर भी रोग को नहीं छोड़ सकते, क्यों? इसलिए कि आत्मिक बल नहीं है। हम लड़ते जाएंगे और छोड़ेंगे नहीं। बाज़ार में पुरुष दूसरों को लड़ते देख कर छुड़ा देता है और उपदेश देता है कि लड़ने में दुष्टता आदि दोष आजाते हैं, जब लड़ने वाले डांट बतलाते हैं और उसको गाली भी देते हैं तो वह लाठी लेकर उनके साथ लड़ने को तैयार हो जाता है। कहता कुछ है कर्तव्य से दिखलाता कुछ है और इसका कारण स्पष्ट है कि उसमें स्वयं आत्मिक बल नहीं है उसमें भी आत्मिक दुर्बलता है जब तक आत्मा की सत्ता और बल को न समझोगे।

सफलता नहीं हो सकती और नही संसार को कठिनाइयों का सहन हो सकता है। गौतम ऋषि ने आत्मा के चिन्ह बतलाए हैं कि "सुख, दुःख राग, द्वेप, इच्छा, प्रयत्न"। इच्छा है सुख की, द्वेप दुःख से है। वेद में परमात्मा से प्रार्थना है कि जब तक हम संसार में रहें सुखी रहें। मनुष्य प्रयत्न से सुख उपलब्ध कर सकता है और दुःख दूर कर सकता है। ज्ञान द्वारा लाभदायक और हानिकारक पदार्थों का अन्वेषण और समझ हो सकती है। कोई पुरुष दुःख को नहीं चाहता परन्तु ज्ञान अल्पज्ञ है अतः प्रयत्न करने से भी परिणाम उल्टा हो जाता है। मैं आपको एक दृष्टान्त देता हूँ स्वामीजी से उज्जैन में लोग पूछते हैं कि महाराज! वेदों का भाष्य उल्टा करते हो उन्होंने कहाकि हां उल्टे का उल्टा करता हूं, इसलिए जब बुद्धि उल्टी है तो उसका सेवन भी वैसा ही करो। समाजी लोगों ने अपने पूर्वजों की खोज की और प्रशंसा भी की।

एक समय दरोगा भैरवप्रसाद जी ईसाई होने लगे। हिन्दू उनके पास दौड़े गये और उनसे पूछा गया कि आप ईसाई क्यों होने लगे हैं। उन्होंने कहा मुझे हिन्दुओं में कोई मनुष्य ईसा की तुलना का दृष्टि में नहीं आता तुम अपने पूर्वजों में से इस जीवन का कोई बताओ? हिन्दुओं ने बताया कि श्रीरामचन्द्र जी हैं, परन्तु

दारोग़ाजी कहते हैं कि वह अवतार हैं मनुष्यों में कोई दिखलाओ। यह हिन्दू बड़े कष्ट में पड़े निदान दारोग़ा जी के सामने हकीकतराय का दृष्टान्त प्रस्तुत किया गया जिसको उसने स्वीकार किया। वह हकीकत जो एक लड़का था परन्तु धर्म की अपेक्षा सिर को कटार के सामने झुका देता है और कहता है कि "जिस धर्म की तलाश थी वह आज पा लिया है"। माता अपनी और स्त्री की दुःखभरी अवस्था सुनाती है और रुदन करके कहती है कि क्यों अपनी जान खोता है? परन्तु हकीकत समझता है कि एक जान के जाने से हज़ारों जानों का स्वामी अर्थात् ईश्वर मिल जाएगा। आर्य्यसमाजियों ने तहकीकात तो कर दी परन्तु ज़िम्मेवारी न समझी जब तक ज्ञान और प्रयत्न ठीक न होगा तब तक परिणाम ठीक न निकलेगा। ज्ञानपूर्वक प्रयत्न करोगे तो लाभ उपलब्ध करोगे अन्यथा सारा प्रयत्न व्यर्थ और निष्फल हो जाएगा। पुरुष नहर में कूदता है और पार जाना चाहता है नहर अपने जलप्रवाह की ओर उसको ले जाती है और वह धारा में वहा चला जाता है। एक पुरुष ने समझाया कि प्रयत्न तो ठीक है परन्तु ज्ञान ठीक नहीं, सीधे और किनारे पर न जा तिर्छा तैर कर जा पार हो जाएगा। पहला प्रयत्न उलटे ज्ञान से संबंध रखता है। एक पुरुष लैम्प जलाना चाहता है। वायु

चल रही है। दियासलाई जलाता है परन्तु दियासलाई वायु वेग से बुझ जाती है इसी प्रकार आधी दियासलाई की डब्बी व्यय हो जाती है। एक पुरुष ने उपदेश किया कि मूर्ख ! वायु में किस प्रकार दियासलाई जलाता है, वायु से अलग होकर ओट में जा। फिर उसने इसी प्रकार किया परिणाम यह निकला कि एक दियासलाई से लैम्प जल गया। इसी प्रकार मनुष्यों का प्रयत्न तथा पुरुषार्थ सुमार्ग पर नहीं होता तो निष्फल जाता है। प्रयत्न तो ठीक है परन्तु सम्बन्ध ज्ञान से नहीं है, मनुष्य को सोच विचार कर काम करना चाहिए, भारतवर्ष में कष्टों का प्रादुर्भाव इसलिए है कि विचार उल्टा हो गया है। इसका उदाहरण लीजिए:—एक पिता के घर में एक लड़का था, पुत्र मरने लगा पिता ने पूछा पुत्र आज्ञा कर जाओ कि क्या करूं ? मैं चाहता हूं कि तुम्हारा संमार्ग बना रहे। पुत्र ने कहा, तुम न करोगे। पिता ने हठ किया। और कहा कि नहीं, करूंगा। लड़के ने कहा कि जब मैं मृत्यु को प्राप्त हो जाऊं मेरी भस्म से अपने द्वार पर समाधि बना देना। पिता ने इसी प्रकार समाधि बना दी। अब नित्य प्रति के दुःख का सामान मोल ले लिया। प्रति दिन उसको देख कर और स्मरण कर रोना आरम्भ किया और निर्बल होता गया। इसी प्रकार भारतवासियों ने ब्रह्मचर्य्य को छोड़ा और अल्प

आयु के विवाह की कुरीति प्रचलित कर दी। लड़के मरने लगे और सारे गृहों में समाध बने हुए हैं इसका विचार नहीं किया कि यह सम्बन्ध ज्ञानपूर्वक है? और न अपनी सन्तान के दुःख दूर करने का कोई उपाय सोचा है। एक देवी ब्राह्मणी थी परन्तु मुसलमान होगई। उसके मुसलमान होने का कारण आर्य्यसमाजियों ने पूछा तो विदित हुआ कि उसने मुसलमान होने से पूर्व समस्त हिन्दुओं के आगे हाथ जोड़ उनको याचना की कि काम दो और रक्षा करो। प्रथम तो किसीने घर रखने का साहस न किया और दूसरे यदि कोई रख भी लेता तो देवी ने कहा कि लोग रखने वाले पर और उस पर दुष्टभावयुक्त सङ्केत करते हैं, इन सब उपाधियों से बचने के लिए वह इस मण्डली से पृथक् होगई। अब कहने लगी "हक्का हक्का हक्का—कुफ़र छोड़ दिखाया मक्का," यह भेद है इसलाम में। कौन तुम्हारी नित्य प्रति की धतकार को सहन करता रहे। क्रोड़ों की संख्या में विधवाएं हैं क्या कोई उपाय सोचा है? इतने बी. ए; एम. ए. आर्य्य तथा हिन्दुओं में हैं क्या कभी कोई उपाय उनके दुःख निवारण का सोचा है? पैसों का चिन्तन है परन्तु जाति की निर्बलता का विचार नहीं, यदि इस प्रकार कर्त्तव्य रहा तो सब मर जाओगे। प्रसिद्ध है कि सबल के सब ही सहाई हुए, दुर्बल का कोई सहाई नहीं।

सज्जनो ! लकड़ियों के ढ़ेर को आग लगे यदि वायु चले तो वह भी आग को ही सहायता देता है, परन्तु वही वायु दीपक को बुझा देता है इसमें भेद स्पष्ट है वह पहला सबल है दूसरा दुर्बल ॥

आत्मिक बल की आवश्यकता—संसार में निर्धन को मार है। परन्तु निर्धन हैं कौन ? आत्मिक बल की निर्बलता वाला । इस पर अकबर और बीरबल की कथा का स्मरण होता है—एक पुरुष ईंटें लेने जाता है, एक कूप के पास जाकर देखा तो कूप गहरा और दृढ़ था ईंटें न निकाल सका । फिर दूसरे कूप के निकट गया वहां ईंटें निकली हुई थीं वहां से उठा लाया । अकबर और बीरबल दोनों उसका अनुसन्धान और निश्चय करने के लिए गए और देखा कि एक दशा में वह ईंटें न ला सका, दूसरी दशा में ले आया । पूछने पर बीरबल ने कारण बतलाया कि पहले कूप से ईंटें इसलिए न ला सका कि उसमें परस्पर सम्बन्ध था, दूसरे से ला सका कि वहां निर्बलता थी सम्बन्ध नहीं है । मनुष्य के मुख में ३२ दान्त हैं और एक जिह्वा है । जब एक दान्त और दाढ़ हिलने लग जाते हैं तो जिह्वा उसी ओर जाती है जब तक उस दुर्बल दान्त को निकाल नहीं लेती आराम नहीं करती । इसी प्रकार यदि आत्मिक बल को न बढ़ाओगे तो मर जाओगे, परस्पर लड़ते मरते रहोगे ।

लड़ने में तो भारतवासी सिंह समान हैं। यदि संमुख कोई निर्बल आजाए तो उसी समय बलवान् बन जाते हैं और दुर्बल को दुःख देते हैं और उसपर अत्याचार करते हैं। परन्तु यदि कोई पराक्रमी बलिष्ट पुरुष सामने आजाए तो झट दबक कर खिसक जाते हैं। सज्जनो! आत्मिक बल वाले निर्बलों को सहायता करो और यह बात स्मरण रखो—

यदि अंधे के आगे कूप होगा।
अगर चुपके रहोगे पाप होगा॥

यदि एक पुरुष आंखों वाला दूसरे की सहायता नहीं करता तो उसके जीवन पर धिक्कार है। मनुस्मृति में स्पष्ट आया है कि जो मनुष्य जिस इन्द्रिय का उल्टा प्रयोग करता है दूसरे जन्म में वही इन्द्रिय उससे छीन ली जाती है। मनुष्य ने चक्षु का उल्टा प्रयोग किया अगले जन्म में उसको अन्धा बना दिया। अथवा यदि दुराचार करने लगे तो पशुयोनि में फैंक दिया। इस स्थान पर भी तो यही अवस्था है कि यदि एक पुरुष बन्दूक का लाइसैंस रखते हुए मनुष्यों पर चांदमारी करने लग जाए तो बन्दूक उससे छीनी जाती है। भाई! उपयोग उल्टा न करो, आत्मिकबल को बढ़ाओ, इसी में सारी उन्नति का भेद है, फिर यदि हिमालय जैसी दृढ़ और कड़ी आपत्तियां भी आएंगी तो उनको

सुख में परिवर्तित कर सकोगे । छोटी लड़कियों के विवाह और विधवाओं का क्या उपाय सोचा है ? यदि इसी प्रकार प्रमाद में पड़े रहोगे तो आपका देश कभी नहीं उठ सकता ॥

वृहदारण्यक-उपनिषद् के भाष्य में श्रीशंकराचार्यजी लिखते हैं कि मनुष्य को एक काम करने के पीछे और कोई नहीं रहता अर्थात् ब्रह्मज्ञान के पीछे, और एक काम से बढ़ कर कोई पुण्य नहीं अर्थात् अश्वमेधयज्ञ । अश्वमेध यज्ञ-घोड़े का यज्ञ अथवा अश्व बध नहीं है । प्रत्युत एक न्यायशील राजा जब जानता है कि प्रजा पीड़ित है तो दूसरे [राजा] के अन्याय से छुड़ाता है उसका नाम 'अश्वमेध' है । अब भूल से लोग अश्व और हस्ति की आहूति देने लगे । इसी प्रकार से बतलाया कि एक से बढ़ कर कोई पाप नहीं है अर्थात् गर्भपात, इसका कारण स्पष्ट है कि कोई किसीको पाप की शत्रुता अथवा धन के लोभ से घात करता है परन्तु माता के गर्भवाले ने क्या अपराध किया है ? जब जाति ही इसमें दुःखित है तो क्या इसका प्रयत्न न करें और यदि करें तो देखें कि क्या यह प्रयत्न ज्ञानपूर्वक है । सज्जन आत्मिक बल वहां है जहां पर ज्ञानपूर्वक प्रयत्न है, इसको एक दृष्टांत से स्पष्ट किया जाता है । वन में एक जलाशय में जल भरा हुआ है एक पुरुष उसको जल रहित करना चाहता है, उसको पांच नालियां

जाती हैं वह पुरुष उसको एक वर्तन से जलशून्य करना चाहता है, जितना वह खाली करता है उतना ही भर जाता है। एक विचारशील पुरुष ने इसको ऐसा करते देख कर बतलाया कि यदि १५ दिन भी लगे रहोगे तो यह कुण्ड ख़ाली न होगा क्योंकि तेरा यह कर्म्म अज्ञानयुक्त है उसने बतलाया कि नालियों का मुख दूसरी ओर कर दो तो छः अथवा ७ घण्टे में यह कुण्ड खाली हो जाएगा। अब इस दशा में पहला प्रयत्न ज्ञानशून्य था परन्तु दूसरा ज्ञान-पूर्वक। इसी प्रकार मनुष्यों का हाल है आजकल श्राद्धों के दिन हैं। श्राद्ध से अब कितनी हानि हुई है इसके तत्व का बोध हो जाता तो लाभ था अब इसके विपरीत हानि हो रही है। श्राद्ध करने से विद्या बल, धन, परस्पर प्रेम, सुन्दरता सब कुछ इसमें था किन्तु उलट दिया सब कुछ जाता रहा। आप जानते हैं कि अंग्रेज़ी की शिक्षा यहां किस प्रकार बढ़ी ? कलक्टर साहब ने एक ऐन्ट्रेंस पास को बुलाया, सभा में सब विद्यमान थे। उस लड़के का मुख आनन्द से प्रफुल्लित हो रहा है। कलक्टर साहब ने सबके संमुख उसके कण्ठ में पुष्पमाला डाली और पारितोषिक दिया उसे देख कर शेष बालकों के मन में उत्साह उत्पन्न हुआ कि आगामी वर्ष हम भी ऐसा ही करेंगे और पारितोषिक उपलब्ध करेंगे इस प्रकार पाठ में परिश्रम होता है जब उद्देश्य की पूर्ति होती है तब मान

होता है । इसी प्रकार श्राद्ध पिता, दादा प्रपितामह, माता, प्रपितामही के होते हैं । मनुजी कहते हैं कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जो ब्रह्मचारी गुरुकुल में विद्या अध्ययन करके आता है उसको "वसुपिता" कहते हैं। २६ वर्ष तक पठित को "रुद्र" और ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी की 'आदित्य' संज्ञा होती है। आजकल के गुरुकुल भी इसी प्रणाली के आदर्श की ओर चले हैं परन्तु आप जानते हैं कि भले कार्य्यों में अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न हो जाती हैं। जैसे आम के परिपक्व होने पर्यन्त कितने कष्ट और उपद्रव होते हैं। गुरुकुल में यह तीन कार्य्य होते हैं। (१) शारीरिक बल वर्धन करना (२) विद्या प्राप्ति (३) तपस्वी होना । परन्तु आज हम लोगों की दशा अन्यथा है । उस समय अध्यापक धन लेकर कार्य नहीं करते थे परन्तु वानप्रस्थी वह कार्य करते थे गृहस्थ-आश्रम को पूर्ण करके जब पुत्र के गृह पुत्र अर्थात् पौत्र उत्पन्न हो जाता था । तो वह मनुष्य वानप्रस्थ में चला जाता था । उस समय वह कहता था, हे पुत्र ! तुझे मैंने बनाया अब अपने पुत्र को तू स्वयं योग्य बना और अपना कर्तव्य पालन कर । इसी प्रकार लोग वानप्रस्थी-गुरुकुलों में गृहस्थ होकर आश्रम का पालन कर और अनुभव उपार्जन करके चले जाते थे। और ब्रह्मचारियों का शिक्षण करते थे। आजकल के उपाध्यायों

की यह दशा नहीं हैं। अब शुद्धाचरण के केवल व्याख्यानों की आवश्यकता नहीं हैं प्रत्युत कर दिखलाने की है। एक वृद्ध पुरुष आम के पेड़ लगा रहा था, एक युवक ने देख कर कहा 'बाबा! क्या कर रहे हो? तुम बूढ़े हो यह कब फलें और फूलेंगे और इसे कब खाओगे? वृद्ध ने उत्तर दिया कि मुझे मेरा उद्देश बल दे रहा है और काम करने को उत्तेजना दे रहा है कि अन्य लोगों के लगाए फल मैंने खाए थे मेरे लगाये आने वाली संतान खाएगी। इसी प्रकार एक फ़ारसी के कवि ने कहा है:—

"भोजन जीवन के लिये न कि जीवन भोजन के लिये"

यह जीवन शृंखला थी जो प्राचीन समय में प्रचलित थी और यह था उद्देश्य जिसके आधार पर वानप्रस्थी गुरुकुल में कार्य किया करते थे। अब २४ वर्ष के मुख्याध्यापक हैं तो २२ वर्ष के उनके शिष्य हैं। आज प्रथा ही और चल रही है। प्राचीन काल में संज्ञा विद्या गुण आदि के आधार पर होती थी केवल आयु तथा संतान के होने पर निर्भर न थी। भीष्मपितामह ३९ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहा और विवाह नहीं कराया फिर भी सारे संसार का पितामह कहलाया। भारतनिवासियों के लिए आवश्यकता यही है कि पहले तो माता पिता बनें और फिर सन्तान उत्पन्न

करने के अधिकारी बन कर माता पिता कहलाएं। अब माता पिता के योग्य बनने के बिना ही सन्तान उत्पन्न की जा रही है। सज्जनो! युवावस्था में तीन वस्तु काम देती हैं—बल, सन्तान, धन। यदि कन्या की आयु १६ वर्ष और वर २५ वर्ष का और दोनों बलयुक्त हों तब युवाकाल की सन्तान उत्पन्न होती है और उनमें बल और पराक्रम भी होता है। भला १९ वर्ष का लड़का सन्तान उत्पन्न करे तो यह सन्तान बलवान् तथा पराक्रमी कैसे हो सकती है अभी इस लड़के को आठ वर्ष और पिता बनने के लिए चाहिएं।

यह तो ऐसा ही है जैसे एक पुरुष कहे कि पहले मुझे मल्ल बना लो फिर मैं मल्लस्थान में जाऊंगा। पंजाबी का एक कथन है कि "यदि पिता के पुत्र हो और माता का दुग्ध पान किया है तो आ जाओ मैदान में"। सन्तान सिंह की न्याईं उत्पन्न करो, शूरवीर बनाओ अन्यथा यदि निर्बल और बलहीन १०–२० पुत्र उत्पन्न कर दिए तो किस काम के? सिंह एक दो भी हों तो पर्याप्त हैं और शोभा देने वाले हैं। भला ऐसी सन्तान से क्या लाभ कि बिल्ली आए तो कबूतर की न्याईं आंखें बन्द कर लें? विपत्ति बल उत्पादक है। एक पराक्रमी पुरुष वन में जाकर भी धन पास हो और सहन की शक्ति भी हो धन तथा अपनी रक्षा कर सकता है

परन्तु बलहीन कुछ नहीं कर सकता, मिलान करते समय निर्बल सिद्ध होगा, और उत्साह को त्याग देगा। जिस मन में सङ्कल्प उत्पन्न हो आत्मिक और शारीरिक बल पैदा होते हैं। ज्ञानपूर्वक विचार न होने से अब श्राद्ध उल्टे हो गए हैं। वास्तव में श्राद्ध है श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम। इससे विद्या, बल बुद्धि तथा विद्वानों की वृद्धि होती है। "विद्यातपोधना ब्राह्मणाः" ब्राह्मणों का काम विद्या और तप था। धनप्राप्ति उनका काम न था। उनकी रक्षा के लिए क्षत्रिय तथा वैश्य थे, पितर लोग और ब्राह्मण लोग चतुर्मास में ठहर जाया करते थे क्योंकि यात्रा के कष्ट से विश्राम लेकर आगामी के कार्य्य के लिए तैयार होते थे, वर्षा के कारण कीट पतंग आदि जन्तु उत्पन्न हो जाते थे और यात्रा में कष्ट भी होता था अतः इस ऋतु में लोगों को अच्छे शुभ कार्य्य के करने और अशुभ के हटाने में उपदेश देने के लिए ठहर जाया करते थे इसके साथ ही प्रेम और प्रीति के संचार करने वाले होते थे। आज भी यह दशा वर्त्तमान है। जब कभी कोई उच्च अधिकारी अधिकार परिवर्त्तन पर जाता है तब उसके इष्ट मित्र तथा सम्बन्धीगण उसके जाते समय कुछ दिनों के लिए ठहरा लेते और उसको भोज देकर प्रेम और प्रीति को बढ़ाते हैं। इसी प्रकार वह पितर निर्भय होकर

उपदेश सुनाते थे । १५ दिवस पर्यन्त यही चर्चा हुआ करती थी । अब काम विपरीत हो गया और प्रचलित हो गया मृतक का श्राद्ध । भला पिता, पितामह, प्रपितामह का तो श्राद्ध किया जाता है परन्तु लड़के और लड़कियों का जो मृत्यु प्राप्त हो जाएं उनका क्यों नहीं श्राद्ध किया जाता ? वेदों में इसको 'पितृयज्ञ' कहते थे । आर्य्यसमाज भी पितरों के लिए ही कहता है किन्तु मृतकों के लिए नहीं प्रत्युत ऐसे पितरों के लिए जिनका वर्णन ऊपर किया गया है भला, सनातनीभाइयों से कोई पूछें कि पिता आत्मा है या शरीर, यदि वह शरीर है तो वह जल कर भस्म हो गया और यदि आत्मा है तो आत्मा जो शरीर धारण करता है वह इसी भांति का शरीर लिंग धारण करता है तो फिर प्रश्न यह है कि श्राद्ध किसका किया गया ? भाव उल्टा हो गया और मृतकों के श्राद्ध चल पड़े । हम से तो लंकाद्वीप वाले ही अच्छे हैं । मैंने लंका में जाकर पूछा कि छः मास कुम्भकर्ण सोया करता था यह कैसे सम्भव हो सकता है ? तो मुझे इसका लेखा करके बतलाया गया कि वर्ष में ६ मास रात्रि और ६ मास दिन होता है तो इसके हिसाब कुम्भकर्ण ६ मास ही सोया करता था इसमें असम्भव बात क्या है ? सारांश यह है कि कई बातों के अर्थों का अनर्थ हो गया है । जिस प्रकार कोई

अध्यापक लड़कों को आज्ञा दे कि बोलो, मत पढ़ो तो कोई इससे समझ लेवे कि बोलो—मत पढ़ो। इसी प्रकार श्राद्ध के अर्थ के अनर्थ कर लिए गए हैं।

भाई! आत्मिक-बल वर्धन करो, शारीरिक-बल बढ़ाओ, बुरी बातों को तत्काल छोड़ो। विपत्ति के पश्चात् सम्पत्ति आया करती है। विद्वान् बिना साधन के, गृह बिना द्वार, तथा वृक्ष बिना फल की न्याई हैं। पहले आप सुना करें। सुन कर विचारें फिर उस पर साधन करें, ऋषि इतना काम न कर सकते थे। शरीर और आत्मा दोनों बलवान् करो। युवको! अपने कर्त्तव्य को विचारो, अधिकारों के ढेर बढ़ गए हैं। दुर्गुण दुर्व्यसनों का परित्याग करो, शुभ विचारों को ग्रहण करो तो सुख प्राप्त करोगे और दुःख से बचोगे।

धर्म का आश्रय लो, यदि जीवन चाहते हो।

बार २ हम कहते हैं कि हमारे भाई ईसाई और मुसलमान हो रहे हैं परन्तु हम उनकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते और करें भी कैसे ? जो स्वयं सुरक्षित नहीं वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा, जो स्वयं सो रहा हो वह दूसरों को कैसे जगाए ? जिसने अपना सुधार तो किया नहीं परन्तु दूसरों के सुधार का यत्न करता है इसका यत्न कैसे सफल हो सकता है ? इसका नाम अन्धपरम्परा है।

लोग कहते है कि उपदेश का अधिकार सबको है परन्तु शास्त्र की कुछ और ही सम्मति है। शास्त्र लिखते हैं "जीवन्मुक्तनिष्ठः उपदेश" अर्थात् उपदेश का अधिकार जीवनमुक्त पुरुष को ही है। जो स्वयमेव मार्ग भूल गया है वह दूसरों के पथ का प्रदर्शक नहीं हो सकता। कथा—एक पंडित बड़े प्रभाविक शब्दों में मद्यपान के विरुद्ध उपदेश करता था। एक पुरुष ने उसके उपदेश से प्रभावित होकर मद्यपान त्याग दी। इसके दो तीन दिन पश्चात् वह पुरुष उस पंडित को धन्यवाद देने के लिए उसके गृह पर गया। जब पहुंचा तो क्या देखता है कि वह पंडित स्वयं मद्य का सेवन कर रहा है। यह देख वह चकित हो गया कि

क्या यह वही पंडित है जिसकी युक्तियों को सुन कर मैंने मद्य का परित्याग कर दिया था ? उसके उपदेश का विपरीत प्रभाव पड़ा, अब उसको कितना उपदेश करो वह नहीं मानेगा । इसीलिए कहा गया है यदि तुमने किसीसे कोई दुष्ट स्वभाव का त्याग कराना हो तो पहले स्वयं उस दुष्ट स्वभाव का परित्याग कर दो, प्रदर्शिनी घोड़े संसार को केवल दिखावमात्र होते हैं परन्तु क्या किसीने कागज के बने घोड़े को काम करते देखा ? संसार में जीवन ने जीवन डाला है । जिनका कथन कुछ और है, मन्तव्य कुछ और, कर्तव्य कुछ और, उन्होंने संसार में कभी कोई काम नहीं किया ।

किसी आर्य्यसमाजी से पूछा जाता है कि क्योंजी जी आप कौन हैं ? उत्तर मिलता है कि आर्य्यसमाजी विचार रखता हूं । भाई ! केवल विचारवाले आर्य्य-समाजी की आवश्यकता नहीं, यदि कभी थी तो वह समय व्यतीत हो चुका । अब तो कर्त्तव्यपरायण आर्य्यों की आवश्यकता है इसलिए यदि आपके मन में संसार सुधार की चिन्ता है तो पहले आप सुधरो । अन्य लोग तुम्हारे कर्त्तव्यों का अवलोकन कर सुधर जाएंगे । अब प्रश्न यह है कि अपना सुधार कैसे करें ?

आप प्रतिदिन देखते हैं कि यदि भोजन में ज़रा सा बाल आजाए तो भोजन खाया नहीं जा सकता,

परन्तु शिर पर असंख्य बाल हैं । कफ़ और रुधिर को देख कर अत्यन्त घृणा होती है परन्तु शरीर के भीतर यह सब कुछ विद्यमान हैं। शरीर के समस्त अंगों से मैल निकलता है फिर कौनसी वस्तु इसमें है जिससे यह पवित्र समझा जाता है । शास्त्र बतलाते हैं कि आत्मा का संयोग ही शरीर की पवित्रता का कारण है । यदि अन्तःकरण को शुद्ध रक्खा जाए तो शरीर और आत्मा दोनों शुद्ध रह सकते हैं इसलिए सब से बड़ी आवश्यकता अन्तःकरण के मार्जन की है । अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो ? अन्तःकरण को शुद्ध करने वाली सब से पहली शक्ति काम है। इस शक्ति का सुधार करने के लिए शास्त्र कहते हैं 'अशुभगुणानामिच्छा कामः' अशुभ सङ्कल्प यदि दब गए तो आपने काम को जीत लिया। अशुभगुणों की इच्छा का नाम ही काम है अछूतों का आत्मा क्यों दब गया इसलिए कि आपने उनका तिरस्कार करके उनमें शुभ इच्छा उत्पन्न होने की शक्ति ही नहीं रहने दी । इसलिए जीवन सुधारने के लिए सबसे पहला साधन शुभ इच्छा पैदा करना है ।

दुष्कर्मों से घृणा सच्चा 'क्रोध' है। अपने भीतर ऐसा बल पैदा करना जिससे कोई दुष्टभाव अन्तःकरण को मैला न कर सके ।

लोभ—लोभ का यह आशय नहीं जो हमने समझ रक्खा है कि जिस प्रकार भी बने धन मिल जाए ले लेना। शास्त्रकार बतलाते हैं:—'आत्मरक्षाणाम् सदैव लोभः' ऐसी वस्तु का लोभ करना जिससे आत्मा की रक्षा हो। परमात्मा ने धन दिया परन्तु ऐसे कृपण बने कि एक कौड़ी भी भले कामों में व्यय नहीं करते। आत्मा का कल्याण कैसे हो? हमारी अवस्था आजकल बहुत पतित हो रही है। धर्म के कामों में समय इसलिए नहीं देते कि यहां से कुछ लाभ प्राप्त होता दिखलाई नहीं देता। और धन इसलिए नहीं देते कि लोभ है और यदि किसी के अत्यन्त प्रेरणा करने पर एक रुपया दे भी दिया तो फिर समाचारपत्रों में देखते हैं कि हमारा नाम छपा है या नहीं।

एक धनवान् पुरुष का वर्णन है कि वह प्रातः उठ कर अपने आगे दुवन्नियों और रुपयों का ढ़ेर लगा लेता था। जो कोई उससे मांगता वह आंख बन्द कर उसकी इच्छानुकूल एक मुट्ठी भरकर धन उसे देदेता। एक पुरुष ने छल से कई बार उससे धन मांगा और उसने बिना संकोच के दे दिया। जब वह ले चुका तो उसके मन में बड़ी लज्जा आई और उसने सारा धन उस धनी को दे दिया और हाथ जोड़ कर पूछा कि आप का गुरु कौन है जिसने आपको इस उदारता से दान करना सिखलाया है? धनीने उत्तर दिया—

' देने वाला और है जो देता है दिन रैन '

हमारे पूर्वज गुप्तदान करना पुण्य समझते थे परन्तु हमारा देश पश्चिमीय तरङ्ग में वह कर दान को भी अपने व्यवसाय की ख्याति का कारण समझता है।

काम, क्रोध, लोभ को जीत लिया परन्तु यदि आत्मा में सत्य नहीं तब भी कुछ न बनेगा। "सत्य" क्या है ? शास्त्र बतलाते हैं 'आत्मानम्सत्यम् रक्षेत्' जिससे आत्मा की रक्षा होती है वह सत्य है। आत्मा की रक्षा तो होती है सत्य से परंच हम चाहते हैं कि दिन रात ठगविद्या और अधर्म्मयुक्त कार्य्यों के करने पर भी धर्मात्मा कहलाएं और हमारी आत्मा का कल्याण हो। यह कदापि न होगा। पहले इन दोषों को दूर करो, इनको दूर करने के पश्चात् जब तुम्हारा जीवन शुद्ध हो गया तो वह भूगर्भ अग्नि की न्याई तुम्हें बिना कार्य्य न बैठने देगा।

इसलिए पहले आत्मा की रक्षा करो, आत्मा के हनन होने से न पुत्र रक्षा करेंगे, न धन रक्षा कर सकेगा।

मोहः—क्या है ? "मोहस्तु अविद्या" अविद्या ही मोह है। जो अविद्या का आश्रय लेते हैं उनका कुछ नहीं बनता। एक पुरुष वेगवान् वायु में बैठ कर लैम्प जलाना चाहता है, घण्टों यत्न करने पर भी लैम्प नहीं जलता। ज्यों ही एक विद्वान् आया और उसने युक्ति बत-

लाई कि भाई ! दीवार की ओट में जाकर लैम्प जलाओ। उसने ऐसा ही किया और उसी समय लैम्प प्रकाशमान हो गया, इसीलिए कहा गया है किः—

" विना विचारे जो करे सो पाछे पछताय "

अविद्या का कारण दुःख है। वेदान्तशास्त्र कहता है कि लोग थोड़े से ज्ञान और सत्संग से आत्मा का कल्याण चाहते हैं परन्तु हो कैसे ? शरीर की ५ नालियों से अज्ञान और आविद्या का प्रवेश होता है। इसलिए अविद्या और उसके संस्कारों को दूर करने का यत्न करो।

अहंकार—मैं बड़ा हूं, मुझसे बढ़कर कोई नहीं यह 'अहंकार' है। शास्त्र कहता है "आत्मनि आत्माभिमानः"

एक माता ने अपने पुत्र को अपने चर्खे का तकला दिया और कहा कि इसका टेढ़ापन निकलवा लाओ।

वह गया और लुहार ने चोट लगा कर उसका टेढ़ापन निकाल दिया।

अब वह लुहार से बल (टेढ़ापन) मांगता है। लुहार आश्चर्य्य में है कि यह क्या मांगता है ? निदान वह बालक माता के पास गया, माता ने उसे समझाया कि पुत्र ! तकले में बल पड़ गया था लुहार ने चोट लगा कर सीधा कर दिया।

इसी प्रकार हमारी आत्मा में अहंकार से बल पड़ गया है, आवश्यकता है कि इसको चोट लगा कर सीधा किया जाए परन्तु हम क्या करते हैं ? तर्क के रण में हम ने संसार को जीत लिया है परन्तु कर्त्तव्यपरायण नहीं।

एक महात्मा रामकृष्ण हुए हैं जिनके स्मारक में उनका मिशन अब तक है। ऋषि जीवन से उनकी क्या तुलना हो सकती है। परन्तु मृत्यु के समय अपने शिष्यों को बुला कर कहा कि मेरे पीछे मेरे मिशन को जारी रखना। उन्हींके शिष्य विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने अमरीका आदि देशों में वह काम कर दिखाया कि संसार चकित हो रहा है।

भद्र पुरुषो ! विचारो कि हम दुष्टभावयुक्त पुरुषों ने अपने आचार्य्य की आज्ञा का पालन कहां तक किया है ? हम तो घर से निकलना ही नहीं जानते। परन्तु बाहर निकले कौन ? गृहस्थ में रहते हुए बाल बच्चों की ममता नहीं छोड़ती, संन्यासी बनना नहीं क्योंकि मन में यह अशुद्धभाव बैठ गया है कि वृद्ध होकर संन्यास ग्रहण करेंगे, भला वृद्ध होकर संन्यास ग्रहण करने का क्या लाभ ? जब कि समस्त इन्द्रियां शिथिल होजाएंगी। उस समय क्या काम कर सकोगे ? बात यह है कि जिस पुरुष में दुष्टभाव हों वह बहाने बहुत किया करता है एक दिन ईसाइयों की मुक्तिसेना [सालवेशन आरमी]

के कुछ पुरुष मुझे मिले। मैंने उनसे पूछा कि आप ने संन्यास क्यों लिया? उन्होंने कहा कि ईसा ने इंजील में लिखा है कि "मैं पिता को पुत्र से अलग करने आया हूं, मिलाने नहीं"। अब इस पर विचार करो कि ईसाई लोग तो संन्यास को धारण करें, परन्तु आर्य्य पुरुष संन्यास का नाम न लें। स्मरण रक्खो कि जब तक तुममें से संन्यासी न निकलेंगे, तुम्हारे धर्म्म का प्रचार न होगा। क्योंकि संन्यासियों के बिना और कोई सीधी सीधी और खरी २ बातें सुना नहीं सकता। तुम संसार को उच्च और सच्चे विचार दो संसार तुम्हारे चरणों में गिरेगा। परन्तु करे कौन? हम तो जगत् व्यवहार में फंसे हुए हैं। हमें राज्य तथा बिरादरी का भय है परन्तु परमात्मा का नहीं॥

उचित तो यह था कि पहला स्थान परमात्मा और धर्म्म के भय को देते परन्तु हमने उसका तिरस्कार किया। जिसने धर्म्म का निरादर किया उसका कभी सत्कार नहीं हो सकता। भीतर की निर्बलता के लिए बाहर की दृढ़ता कुछ नहीं कर सकती। जिस लकड़ी को अन्दर से घुन लगा हुआ हो उसे बाहर का पालश कितनी देर तक स्थिर रख सकेगा इसलिए सबसे पूर्व काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार पर विजय प्राप्त करके आत्मा को दृढ़ करो। जब आत्मा बलयुक्त होगया तो सब कार्य्यों में हमें सफलता प्राप्त होगी॥

हमारे रोगों की जांच करके ऋषि दयानन्द ने वैदिक धर्म्म रूपी औषधि-पत्र हमारे हाथ में दिया, परन्तु हम ऐसे दुर्भाग्य निकले कि वह औषधि-पत्र ही चाट गए। अब रोग की निवृत्ति हो तो किस प्रकार ? डिप्टीकमिश्नर बुलाए तो रोगग्रस्त हुए भी खाट से उठ कर उसके पास दौड़े जाएंगे परन्तु समाज के साप्ताहिक-अधिवेशन में जाने के लिए बहाने ही सूझते हैं, आज हमें जुकाम होगया आज गृह पर कुछ कार्य्य हो गया, डिप्टी-कमिश्नर और बिरादरी का इतना भय परन्तु आर्य्यसमाज जो धर्म्म सभा है उसका इतना भी भय नहीं। फिर धर्म्म का प्रचार करे तो कौन ? वास्तव में बात यह है कि ऋषि के मिशन को पूर्ण करने के लिए इस समय किसी तेजस्वी की आवश्यकता है। हम जैसे संसारभोगी पुरुषों से जिन्होंने रुपये जैसी निकृष्ट वस्तु से धर्म्म को गिरा दिया है वैदिकधर्म्म का प्रचार न हो सकेगा। यदि हम में धर्म्म प्रचार की कुछ अभिलाषा है तो आज से यह प्रण कर लें कि प्राण जाएं तो धर्म्म पर, जायदाद जाए तो धर्म्म अर्थ सन्तान चली जाए। परन्तु धर्म्म न जाए। जिस दिन धर्म्म यह समझ लेगा कि मेरा आदर प्राणों और जायदाद से अधिक किया जाता है उसी दिन धर्म्म तुम्हारी रक्षा करेगा और तुम सारे संसार में वैदिकधर्म्म का प्रचार करने के योग्य हो सकोगे ॥

———:o:———

वैदिक शि ।

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ यजु० अ० ३० ३॥

इस मन्त्र में बतलाया है कि हे ईश्वर न्यायकारी दयालु सारे दुर्गुण हम से दूर रहें और सत्यमार्ग हमको प्राप्त हो। पहला पद निषेध दूसरा विधि है। इस से प्रकट होता है कि जीव की मुक्ति तथा प्रवृत्ति के दो मार्ग हैं। एक सत्य दूसरा असत्य। मनुष्य जितना सत्य मार्ग में प्रवृत्त होता है उतना ही असत्य मार्ग से दूर रहता है। परन्तु जो जितना असत्य मार्ग की ओर चलता है सत्य मार्ग से उतना ही दूर होता जाता है और उसका फल दुःख है।

एक कवि का वचन है:—हे संसारी मनुष्यो! यदि तुम बुरे काम करते हुए यह चाहते हो कि इसका फल दुःख न हो यह हो नहीं सकता। तुम चाहे पर्वत की कन्दरा में छिप रहो, समुद्र के निकट जा रहो, वन में भाग जाओ परन्तु उसका फल अवश्य भोगना पड़ेगा, इस से कभी भी नहीं बच सकते। यदि तुम्हारा विचार है कि देखो संसार में अमुक मनुष्य बुरे ही बुरे काम करता है परन्तु सुखी है धन भी है स्त्री, पुत्र आदि सब ऐश्वर्य्य में है, यह भूल है। यह फल तो उसके पूर्वशुभकर्म्मों का

है जिस समय वह पूर्वजन्म के मिले हुए शुभकर्म्मों का फल पा चुकेगा तो इन सब कर्म्मों का फल अवश्य भोगेगा ॥

जो तुम कहो कि देखो एक पुरुष को सर्प काटता है वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । परन्तु दूसरे को पागल कुत्ता काटता है संभव है कि वर्ष दो वर्ष ४ वर्ष में कुत्ते की न्याई भौंकने लगे और मर जाए इसी प्रकार कर्म्मों का फल तब ही मिलता है जब उसकी सामग्री एकत्र हो जाती है । नवयुवक, वृद्ध, बालक, माता, पिता सब ही जानते हैं कि यह काम बुरे हैं परन्तु इनमें फिर क्यों प्रवृत्त होते हैं ? और शुभकर्म्मों के करने में प्रवृत्त नहीं होते हैं ।

एक वेदमंत्र में बतलाया है कि ईश्वर ! मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो, अशुभ वासनाओं से दूर रहे । इससे प्रकट हुआ कि यह मन द्वार का दीपक है जिस से बाहर और भीतर प्रकाश होता है । इसी प्रकार जीव और प्रकृति के मध्य में यह मनरूपी दीपक प्रकाशित है और जो योगी महात्मा होते हैं इसी मन की शुद्धताई से होते हैं। मन की शक्ति क्या है इसका नाम अन्तःकरण अथवा अतिनिष्करण है । यह चार प्रकार का है । एक तो 'मन' जिससे संकल्प विकल्प हो, दूसरे 'बुद्धि' जिससे मनुष्य विचार करता है ।

तीसरे 'अहंकार' जिससे अभिमान होता है। चौथे 'चित्त' जिससे पूर्व का चिन्तन हो। जैसे एक पुरुष ने एक का अंक लिखा उसके दाहनी ओर एक बिंदु दे दिया तो १० होगए। इसी प्रकार मन अथवा अन्तःकरण चार प्रकार का है। अर्थात् उपाधि से इसके चार भेद हो जाते हैं, जैसे एक पुरुष है उसका पुत्र उसको पिता कहता है, स्त्री पति कहती है, पिता उसको पुत्र कहता है। प्यारो! विचारो। किसी कवि ने कहा है:—

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
पारब्रह्म को पाइये मन ही की प्रतीत॥

मन से ही मनुष्य मोक्षपद को प्राप्त होता है। जिन मुसलमानों के हृदय में वेद की शिक्षा घर कर गई अथवा जिन तक वेद की शिक्षा पहुंची वह भी मग्न होकर बोल उठे।

दिल बदस्त आवुर्द कि हज्जे अकबर अस्त।
अज़ हज़ारां क़अबा यक़ दिल बेहतर अस्त॥

अर्थ—सब से महान् दिल है उसको काबू में ला। यदि तुम एक मन को वश में कर लो तो हज़ार क़अबा से बढ़ कर है। जिसके वश में मन है वह विषयी अर्थात् कामी, लोभी, मोही नहीं। कारण यह है कि मन की अनुपस्थिति में इन्द्रियां अपना कार्य नहीं कर

सकतीं । देखो, जिसकी श्रोत्र इन्द्रिय के साथ मन का सम्बन्ध है वह मेरी बात को सुनता है । जिस का मन घोड़े गाड़ी की स्वच्छता में लगा हुआ है नहीं सुनता । बहुधा लोग कह देते हैं, भाई ! मेरा मन दूसरी ओर था मैंने आपकी बात नहीं सुनी । अतः वेद ने यह प्रार्थना करने की आज्ञा दी है कि मेरा मन शुभसंकल्प वाला हो । यदि तुम्हारा मन पवित्र हो तो जो यह कहता है कि आर्य्यसंस्था क्यों नहीं बनती ? यह बात जाती रहे और आर्य्यसंस्था सरलता से बन जाए ।

विचार करो कि यह मन सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण के चक्रों में पड़ा हुआ है इसको इन चक्रों से पृथक् करो । आप कहेंगे यह कैसे जाना जाए कि हमारे ऊपर रजोगुण अथवा तमोगुण का प्रभाव है । प्यारो ! जिस समय यह विचार उत्पन्न हो कि ४) अमुक धर्म्म के कार्य में देने हैं दूसरा कार्य रोक कर दे दूं उस समय समझो कि सतोगुण का प्रभाव है । और जब यह विचार हो कि चलो किसी का धन हर लाएं और सुख से खाएं समझो कि उस समय मन पर तमोगुण का प्रभाव है । जब ऐश्वर्य्य की चिन्ता हो समझो कि रजोगुण का राज्य है, भक्तजन मनुष्यों के सुधार का सदा यत्न करते रहते हैं । महाराज भर्तृहरि जी कहते हैं यद्यपि यह किसी पाश्चिमीय धनवान् अथवा विद्वान् की

साक्षी नहीं है तथापि यह उस महापुरुष की है जो ३२ करोड़ का राज्य त्याग कर साधु बना—वह कहता है कि सात्त्विकी बुद्धि वाले तो यह चाहते हैं कि मेरा सुख तो इसी में है जिसमें दूसरों अथवा संसार को सुख मिले और मुझे दुःख इसी में है जिस से सारे संसार को दुःख हो। रजोगुणी कहते हैं कि हम आनन्द में रहें दूसरों को न हम से दुःख न सुख हो। तीसरे तमोगुणी कहते हैं मुझको सुख हो चाहे दूसरों को दुःख ही क्यों न हो। यह तीन प्रकार के मनुष्य भर्तृहरिजी ने बताए हैं परन्तु एक पुरुष कहता है कि इनके अतिरिक्त एक चौथा वह है जो दूसरों को दुःख देने और बिगाड़ने के लिए अपना कार्य बिगाड़ दें। सज्जनो! जब तक आप सतोवृत्ति न बढ़ाएंगे उन्नति नहीं हो सकती। जब आप अपने कार्यों अथवा व्यवहारों का लेखा करते हैं, अपने उच्च कर्मचारी से भय करते हैं, बालक को लाड़ प्यार करते हैं अपने शरीर के बनाव शृंगार तथा सौन्दर्य्य में समय देते, कोट आदि पहनने में घण्टा लगाते हैं तो क्या आप अपने मन को पवित्र करने में थोड़ा सा समय देकर प्रयत्न नहीं कर सकते? भाई! जितने समय में शरीर का शृंगार करते हो उसके आधे ही समय में मन शुद्ध बनाया जा सकता है। जितने धर्म हैं उनका कारण मन है। यदि आप मन से दुष्टभाव

और विरोध का काम लेंगे तो दुःख आपके पीछे इस प्रकार चलेगा जैसे चक्र बैल के पीछे। जब आप जानते हैं कि मननशील करने को मनुष्य कहते हैं तो फिर धिक्कार है कि अपना मन शुद्ध नहीं करते। कोई किसी का शत्रु नहीं मन ही शत्रु बनता है। जब मेरे मन में विश्वास नहीं तो दूसरे को मैं कैसे विश्वास करा सकता हूं। इसलिए मन में सतोगुण का प्रादुर्भाव करने की आवश्यकता है। ऋषि कहते हैं कि वेद के विषय सामान्य हैं परन्तु वह आपके समझने ही से समझ में आ सकते हैं। वह दूसरों के दिखाने योग्य नहीं हैं। जैसे जो निर्बल है वह अपने धन की रक्षा नहीं कर सकता परन्तु बलवान् कर सकता है। इसी प्रकार जब आजकल हमारे मस्तिष्क में विद्या के लिए आलस्य है तो किस प्रकार विद्या तथा वेद ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। आत्मा अवश्य उन्नति कर सकता है परन्तु पहले उस पर का आवरण हटा दो तुम कहोगे हम में सतोगुण नहीं है। एक कपड़ा दर्ज़ी के पास ले जाओ और उसे कहो कि इसका कुछ बना दो, वह पूछता है क्या बना दूं? कमीज़ बनाऊं अथवा कोट या पाजामा। तुम कहोगे भाई! मैं कोट के लिए लाया हूं तुम कैसे कमीज़ अथवा पाजामा बना दोगे? बात यह है कि जैसे उसकी विद्या की कतरनी (कैंची) वस्त्र पर चलेगी वैसे ही कमीज़ पाजामा आदि वस्तुएं

बन जाएंगी। इसी प्रकार मनुष्य का मन है। पुत्र ऐसा बनाया जा सकता है कि बकरी से डर भागे। ऐसा भी बन सकता है कि सिंह को मारे। शोक कि तुम स्वयं प्रयत्न न करो और कहो कि पश्चिमी विद्वानों ने कैसे आविष्कार किए। यदि हमको ऋषि दयानन्द वेदों का संदेश न सुनाते तो हम क्या जान सकते थे, गूंगे थे जो बात का उत्तर भी न दे सकते थे। आज उसकी विद्या की कतरनी चलने से हममें वाग्शक्ति आ गई है। ईसाई मुसलमानों के पराजय करने के लिए आर्य्य-समाज बन गया है अर्थात् जितना मल दूर हुआ उतना सतोगुण का प्रकाश हुआ जितना मल है उतना दोष है। जिस प्रकार हमारी ऐनक हरी है तो सब पदार्थ हरे रङ्ग के हैं, यदि रक्त वर्ण की हो तो सब पदार्थ रक्त दिखाई पड़ते हैं। बात यह है कि रक्त पीत रङ्ग दृष्टि-पर आवरण का काम देते हैं, यथार्थ रंग नहीं दिखाई पड़ता। परन्तु श्वेत वर्ण में आवरण नहीं होता यथार्थ रूप दिखाई पड़ जाता है, इसी प्रकार जीव के ज्ञान के आगे तम रज का आवरण पड़ा है उसको दूर करो यथार्थ तत्त्व प्रकट हो जाएगा। अरबी में एक कहावत है कि—'कतल अलमूज़ी क़बल अज़ईज़ा' इस पर विचार करो कि जिस सर्प ने अभी काटा नहीं कैसे जाना कि वह मूज़ी (हिंसक) है अभी उसने काटा नहीं अतः क्यों मारें यदि मारें तो पाप है,

परन्तु जब उसने काटा तब मारने की कोई आज्ञा नहीं और यदि बिना उसके काटे उसको हमने मार दिया तो मूज़ी (हिंसक) हम हुए अथवा वह ? भाईयो ! किसी ने कहा है:—

वडे मूज़ी को मारा नफ़से अम्मारा को गर मारा ।
निहंगो अज़दहा ओ शेरे नर मारा तो क्या मारा ॥

मन ही यथार्थ में हिंसक है जितना कष्ट मन से होता है उतना दुर्भिक्ष रोग तथा हज़ारों सर्पों से नहीं होता । बहुत मारा हज़ार दो हज़ार मनुष्यों को सर्पों ने और सिंहों ने । तनिक जर्मन युद्ध का चिन्तन करो एक मन के लिए कितने जीव मारे गये ॥

अरबी वाला कहता है कि तुम चोर बनने न पाओ किसी को कष्ट देने न पाओ केवल संकल्प ही आए तो उसको तत्काल रोक दो । मनुष्य का मन कपिदृष्टि के समान है इसे मद्यपान करा कर उस वानर की चंचलता को देखो तो सही ? मथुरा में आप भोजन बनाते खाते हैं, वानर आया आपने यदि उससे दो तीन बार दृष्टि मिलाई वह भाग गया अन्यथा रोटी लेकर चम्पत होगा । इसी प्रकार जब किसी धर्म कार्य्य में धन देने का संकल्प उत्पन्न हुआ और यह विचारा कि उसका सोडावाटर क्यों न पी लें व्यर्थ क्यों दें भूखे को भोजन क्यों न दें । परस्त्री का दर्शन करके मन मलीन हुआ आपने तत्काल इस व्यभिचार पर दृष्टि देकर इसको दूर कर दिया,

उसी प्रकार करने से स्वभाव पड़ जाता है और मन आपके आधीन होजाएगा। समस्त शक्तियां आत्मा की हैं और मन से उनका प्रादुर्भाव होता है, इन्द्रियां मन से सम्बन्ध रखती हैं तब सारे कार्य्य होते हैं जब मन इन्द्रियों के आधीन हुआ तो मानो रईस साईस और साईस रईस बन गया, राजा रंक होगया। वनमालीदत्त से हमने मथुरा में सुना कि एक समय ऋषि दयानन्द यमुना तट पर समाधि लगाए ईश्वरस्मरण में मग्न थे। एक माता आई उन्होंने साधु जानकर उनके चरणों में शिर नवा दिया, ऋषि की आंख खुलते ही लक्ष्य पर दृष्टि पड़ी। आप उठे और यह कह कर तुम यहां से चली जाओ, आप गोकुल में पर्वत पर एक मन्दिर में समाधि लगा भूखे प्यासे ३ दिन पड़े रहे, गुरु ने खोज कराई पता लगा कि मनके इस पाप से मुकाबिला करने के लिए उन्होंने वेदाध्ययन का त्याग करके उसका दुःख सहन किया ताकि फिर मन में कदापि ऐसा भाव उत्पन्न न हो। शोक है कि जब दीवाली आती है आप अपने गृहों को स्वच्छ करते हो दीप जलाते हो परन्तु कभी उस गृह के वासी को भी स्वच्छ पवित्र किया? प्रत्युत द्यूत खेलते हैं। हाय! मकान की यह प्रतिष्ठा और उसके वासी की यह दुर्दशा। ऐसी दशा में उन्नति क्या होसकती है? लोग कहते हैं कि युवा पुरुषों में कार्य्यशक्ति और वृद्धों में

अनुभवशक्ति अधिक होती है जिस देश में ऐसा न हो उसका क्या कहना ? मित्रो ! जब तक हम स्वयं न भले बनेंगे दूसरों को भला नहीं बना सकते । सारा प्रयत्न व्यर्थ है । देखो, जब बैल थक जाता है तो रस्सी आगे पकड़ कर खींचने से नहीं चलता । पीछे से डंडा मारो चलने लगेगा परन्तु पशु और मनुष्य में भेद है । जो मनुष्य थका है पीछे से मारने से नहीं चलेगा परन्तु आगे खींचने से चलेगा । हिन्दूजाति थकी है अब तुम स्वयं आगे चलाते जाओ और आगे खींचते जाओ । आंखें खोलो । विपत्ति से अधीर मत हो अधीर होने से कष्ट बढ़ता है । जो इसका मुकाबिला करते हैं उनका कष्ट आधा रह जाता है । धैर्य्य द्वारा बल वर्धन करो और प्रार्थना करो कि "तेजोऽसि तेजो मयि धेहि" हे ईश्वर ! आप तेजस्वरूप हैं हमको तेज दें, बलस्वरूप हैं, हमको बल दें, ऐश्वर्य्यवान् हैं, मुझको ऐश्वर्य्य दें । परन्तु जैसे कोई ऐन्ट्रैंस पास कर और नौकरी की प्रार्थना करे उस पर आज्ञा हो कि अभी तुम उम्मेदवारी करो परन्तु उम्मेदवारी न करे तो क्या उसको नौकरी मिल सकती है या नहीं ? उसी प्रकार यह ठीक नहीं कि तुम केवल प्रार्थना ही करो और प्रयत्न कुछ न करो ॥

जैसे—*कष्ट से सब कुछ मिले बिन कष्ट कुछ मिलता नहीं ।*
समुद्र में कूदे बिना मोती कभी मिलता नहीं ॥

जिसने धन कमाया, घोड़ा गाड़ी न रख कर अपना पेट काट कर धनसंग्रह किया उसकी सन्तान सुख प्राप्त करेगी। जो तुम्हारे पुरुषाओं ने कमाया तुमने खाया अब तुम कमाओगे तुम्हारी संतान खाएगी। सारांश यह कि हमारी विद्या बल आदि पुरुषाओं के कर्त्तव्यों का फल है, जो दुःख है वह पूर्वजों की भूल का फल है। जब ईश्वर पर विश्वास करके मनको पवित्र करने का प्रयत्न करोगे तो सब तेजवान् सामर्थ्यवान् होंगे।

सफलता की कुंजी ।

अभ्यास की महिमा—यदि मनुष्य विद्वान् है तो उसको प्रत्येक वस्तु उपदेश दे रही है । जितनी भी प्राकृत वस्तुएं संसार में दृष्टिगोचर हो रही हैं बुद्धिमानों के लिए वह स्वयमेव एक उपदेश का काम दे रही हैं । संसार में जो मनुष्य अभ्यासशील हैं उनके लिए प्रत्येक काम कठिन से कठिन भी सुगम हो जाता है । परन्तु जो अभ्यास नहीं करते उनके लिए सुगम से सुगम काम भी कठिन प्रतीत होता है । अभ्यास से मनुष्य सर्व प्रकार की शक्ति ग्रहण कर सकता है । और अभ्यास ही परमात्मा की प्राप्ति का साधन है । अफलातून से लोगों ने पूछा कि आपने ज्ञान किससे सीखा ? उत्तर दिया कि मूर्खों से ? पूछा कि वह किस प्रकार से ? कहा कि मूर्खों को बुरे कर्म्मों से दुःख में ग्रस्त देख कर उनके विपरीत काम किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे सुख हुआ । उनसे पूछा आपने नम्रता किस से सीखी ? उत्तर दिया कि वृक्षों से । उद्यान में वही वृक्ष फलों से लदा हुआ है जो झुका हुआ है, इसी प्रकार संसार में सच्चा विद्वान् वही है जिस में नम्रभाव हो । महात्मा दत्तात्रेय कहते हैं कि मैंने एक देवी से शिक्षा उपलब्ध की । एक नया उदाहरण ले लो कि—हम भी

तो प्रतिदिन महादेव की पूजा किया करते थे परन्तु हमारे ध्यान में न आता था कि मिट्टी और पत्थर के महादेव परमेश्वर नहीं हो सकते। परन्तु ऋषि को एक चूहे को महादेव पर चढ़ते ज्ञान होगया। कारण स्पष्ट है कि हम किसी वस्तु को उसके यथार्थ स्वरूप में देखने के अभ्यासी नहीं। जब हम सांसारिक वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में देखना सीखेंगे तब हमें प्रत्येक वस्तु शिक्षा देगी।

एक महात्मा को किसी ने कहा, महाराज! कुछ शिक्षा दो, उस ने उत्तर दिया कि संसार का पत्ता २ शिक्षा दे रहा है। वेद में लिखा है कि संसार में बहुत से पुरुष देखते हुए भी नहीं देखते, सुनते हुए भी नहीं सुनते। अपने आपको अभ्यास में लगाओ अपने आप लाभ उपलब्ध करोगे। दुःख और कष्ट केवल इस लिए हैं कि हमने अभ्यासी जीवन नहीं बनाया। माताएं यदि कृपा करें तो गर्भ-अवस्था से ही बालक को अभ्यास-शील बना सकती हैं। परन्तु माताएं नहीं समझतीं कि हमारे देश को इस समय कैसे बालकों की आवश्यकता है। जिस समय उनको यह ज्ञान होगा कि देश को शूरवीर बालकों की ज़रूरत है उस समय स्वयमेव शूरवीर बालक उत्पन्न होंगे। शिवाजी की माता ने उसको लोरियों में यह शिक्षा दी थी कि यदि शत्रु को विजय करना है

दूसरे की स्त्री को मातृवत् देखो। माता की लोरियों से शिवाजी का मन इतना दृढ हो गया कि आज संसार में उसका यश है। रणजीतसिंह की माता ने भी देश की अवस्था के अनुसार उसे तैयार किया था यही कारण था कि रणजीतसिंह ने अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। रणजीतसिंह अपनी विजय पताका को देख कर एक दिन प्रसन्न हो रहा था। उसने माता से पूछा, माता! मैं किस प्रान्त को विजय करूं! माता ने उत्तर दियाः—

सब ही भूम गोपाल की उस में अटक कहां!
जिसके मन में अटक है वही अटक रहा॥

बालकों को शिक्षा कैसी देनी चाहियेः—प्रश्न उठाया गया है कि बालक को शिक्षा कैसी देनी चाहिए? शास्त्र कहते हैं कि बालक को जन्म से १६ वर्ष पहले शिक्षा दो। लोग आश्चर्य्य करेंगे कि वह किस प्रकार शास्त्रों ने विधि बतलाई है कि जिस देवी के गर्भ से बालक ने जन्म लेना है उसको शिक्षा दो। परन्तु यह माताएं क्या जानें। दशा सारी की सारी बिगड़ी हुई है यदि उसको सुधारना चाहते हो तो पुरुषार्थ करो। बालक बाल्यावस्था से ही पुरुषार्थी होता है। तनक प्यार से उसे उन्नति के मार्ग पर लगा दो सदैव उसका पग उस पर ही उठेगा। शारीरिक उन्नति की न्याईं वह

ज्ञान आत्मिक उन्नति की ओर भी चलाता है, अन्वेषण की शक्ति बालक में स्वाभाविक होती है। बालक माता से प्रश्न करता है कि माता वह क्या निकला ? माता कहती है कि चांद। बालक फिर पूछता है कि चांद क्यों निकला ? और किसने निकाला। वह तो प्रत्येक बात का पूरा ज्ञान उपलब्ध करना चाहता है, परन्तु जब माता पिता स्वयं ही नहीं जानते तो उसे क्या बताएं ? इस लिये कहा है "**मातृमान्, पितृमान्, आचार्य्यवान् पुरुषो वेद**" सब से पहला दर्जा माता को दिया गया है। जो कुछ माता अपनी मातृभाषा में सिखलाएगी वह सारी आयुभर बालक के हृदय पर अङ्कित रहेगा और यही कारण है कि सारे सभ्य देशों में शिक्षा मातृ-भाषा में ही दी जाती है। अन्य भाषा में शिक्षा पाने वाले बालक इतने विद्वान् और धार्मिक नहीं बन सकते जितने अपनी भाषा में पाने वाले बन सकते हैं। इस लिए मातृभाषा के प्रचार का यत्न करना प्रत्येक आर्य्य का कर्तव्य होना चाहिये। आप पूछेंगे कि माता क्या शिक्षा दे सकती है ? शिक्षा तो निःसन्देह वह कुछ अधिक नहीं दे सकती परन्तु शिक्षा का अधिकारी अवश्य बना सकती है। परन्तु शोक है कि आज हमारी माताएं पीरों, फ़क़ीरों और क़ब्रों का आश्रय ले रही हैं। जिस प्रकार क़ब्र का एक भाग टूट जाने से क़ब्र को

कुछ पता नहीं लगता—चूंकि हम जड़ पदार्थों की पूजा कर रहे हैं और यही हमारे उपास्यदेव हैं और हमारी जाति का एक भाग कट रहा है परन्तु हमें पता नहीं लगता। गौ बैल आदि सब अपने पुत्र आप उत्पन्न करते हैं परन्तु मनुष्य के पुत्र पीरों फ़कीरों की सहायता से उत्पन्न किए जाते हैं। कारण यह कि हमारा वीर्य्य पुष्ट नहीं रहा। एक कृषक जितनी अपने बीज की पर्वाह करता है शोक कि हम उतनी नहीं करते। दयानन्द एक था उसने हम सबको चैतन्य किया परन्तु हम सब मिल कर भी एक दयानन्द नहीं बना सकते। कारण यह कि दयानन्द की माता ने उन पर संस्कार डाले थे। हम संस्कारों से शून्य हैं। शिक्षा का हमारे हां यह हाल है कि विदेशों में पशुओं को शिक्षित बनाया जाता है। बस हमारे पुरुष शिक्षा से सर्वथा शून्य रहते हैं और रहें भी क्यों न जब कि बालक तो माता के गर्भ में है, नवां मास व्यतीत हो रहा है परन्तु पति पत्नी में घोर संग्राम हो रहा है और फिर आशा यह होती है कि बालक अच्छा और योग्य उत्पन्न हो। माताओ! बालक इस प्रकार नहीं उत्पन्न हुआ करते। बालकों का उत्पन्न करना हमारे शास्त्रों ने एक भारी यज्ञ लिखा है। जिस प्रकार यज्ञ रचाने के लिये विशेष तैयारी की जाती है इसी प्रकार बालकों के लिये विशेष

तैयारी करनी चाहिए तब धार्मिक और शूरवीर उत्पन्न हो सकते हैं।

प्रार्थना का फल क्यों नहीं मिलता—लोग बहुधा यह कहते सुने जाते हैं कि हम नित्य प्रति परमात्मा से प्रार्थना करते हैं परन्तु फल प्राप्त नहीं होता ! भद्र पुरुषो ! प्रार्थना वही सार्थक हो सकती है जिसके साथ साथ कर्तव्य परायणता भी हो। हम संध्या में प्रति दिन परमात्मा से १०० वर्ष तक जीने की प्रार्थना करते हैं परन्तु हमारा कार्य्यक्रम वैसा नहीं। बल वीर्य्य को नष्ट करके शरीर को रोगी और निर्बल बना रहे हैं।

ऐसी दशा में भला परमात्मा हमारी प्रार्थना को क्यों स्वीकार करेगा ? जो कुछ हम मन से प्रार्थना करें उसके अनुसार ही साथ २ कर्म्मनिष्ठ हों तब तो वह प्रार्थना स्वीकार हो सकती है अन्यथा हम परमात्मा से हंसी ठट्ठा कर रहे हैं। जिस प्रकार एक धनवान् के पुत्र को उसको वृद्ध सेवक के द्वारा भूमि में दबा हुआ कोष मिल गया था ठीक उसी प्रकार स्वामी दयानन्द की कृपा से आपको खोया हुआ वेद का कोष प्राप्त हो रहा है। अब भी यदि आपने इससे लाभ न उपलब्ध किया तो आप से बढ़ कर अभागा और कौन होगा।

(१) संसार में यदि सुखी जीवन चाहते हो तो

माताओ और भाइयो वेदों के बतलाये हुए संस्कारों से शूरवीर बालक उत्पन्न करो ।

(२) परमेश्वर को मानो और उसकी उपासना करो ।

(३) संघात की शक्ति को दृढ करो संसार में संघात की शक्ति में ही सफलता का भेद छिपा है ।

(४) प्रत्येक के साथ प्रेम तथा नम्रता पूर्वक बर्ताव करो ।

(५) सारा दिन जगत् के व्यवहारों में व्यतीत करते हो प्रातः तथा संध्या काल परमात्मा के अर्पण करो और उसी से बल मांगो यही सफलता की कुंजी और उसके साधन हैं ।

धर्म्म पर आरूढ़ रहो।

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥

इस वेदमंत्र में प्रार्थना की गई है कि हे परमात्मन्! आप हमें दुर्गुणों से पृथक् करके शुभगुणों में लगाइये। भाइयो! केवल प्रार्थना करने से हम बुरे कामों से नहीं हट सकते जब तक कोई साधन न होगा। दूर क्यों जाते हो अपने शरीर से ही इसका उदाहरण ले लो। हमारे मुख में तीन प्रकार के दान्त हैं। एक काटने के, दूसरे कुतरने के, तीसरे चबाने के। यदि इन तीनों में से एक प्रकार के न हों तो भोजन अच्छी प्रकार नहीं पच सकता। प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिए साधनों की आवश्यकता है। सुख के लिए यदि साधन न हो, सुख नहीं मिल सकता। सुख पार्सलों में बन्द होकर कहीं बाहर से नहीं आता, परतंत्रता दुःख है और आत्मदर्शिता सुख, सुख मनुष्य के अन्तरात्मा में विद्यमान है। शास्त्रों ने बतलाया है जहां प्रेम है वहां सुख है। प्रेम श्रद्धा और विश्वास में है, विश्वास सत्य में है, सच्चाई विद्या से ग्रहण की जाती है विद्या बिना तप के प्राप्त नहीं हो सकती और तप बिना ब्रह्मचर्य्य के नहीं होता। यदि आप इन छः दरजों को पार कर जाएं तो सुख पा सकेंगे।

संसार सत्य पर स्थिर है—श्रद्धा सत्य के आश्रय पर खड़ी है, जिस श्रद्धा में सत्य नहीं वह फलदायक नहीं हो सकती और न ही वह सत्य लाभकारी हो सकता है जिसमें श्रद्धा न हो। पौराणिकों में श्रद्धा तो बहुत है परन्तु सत्य नहीं, प्रत्युत आर्य्य-समाजियों में सत्य है किन्तु श्रद्धा नहीं। परिणाम यह है कि दोनों को सुख नहीं। नकल करने वाले भाण्डों का कोई विश्वास नहीं करता यदि उसको वास्तव में उदर में पीड़ा होती हो तो लोग यही समझते हैं कि हंसी कर रहा है। हमारे सारे कार्य्य असत्य पर ही चल रहे हैं जिसका परिणाम यह है कि परस्पर विश्वास नहीं रहा। यदि कोई दुकान वाला ठीक दाम भी बतलाता है तो विश्वास नहीं आता। परन्तु टिकट मोल लेते समय कोई अविश्वास नहीं करता क्योंकि वहां सत्य का विश्वास है। सत्य की परीक्षा विद्या से की गई है। जहां अविद्या है वहां अन्धकार है। अन्धकार बिना प्रकाश के दूर न होगा।

प्राकृत अन्धकार को दूर करने के लिए प्राकृत प्रकाश की आवश्यकता है और आत्मिक अन्धकार के नाश के लिए विद्या की आवश्यकता है।

जो जाति विद्या से विमुख हो जाती है उसकी जितनी भी दुर्दशा हो थोड़ी है। मूर्ख जाति में से

सुख का अनुभव उड़ जाता है। काशी के विद्वान् धर्म्म की दुर्दशा देख कर चुप बैठ रहे परन्तु स्वामी दयानन्द का दिल फड़क उठा। वह उस अत्याचार को जो धर्म्म के नाम पर हो रहा था सहन न कर सका। सत्य धर्म्म विद्या का पति है, उसकी दो सन्तान हैं एक पुरुषार्थ दूसरा विज्ञान। ऋषि दयानन्द के भीतर जहां विद्या थी वहां सत्य धर्म्म भी था। उन्होंने विज्ञान से अनुसंधान किया और पुरुषार्थ से उसको समस्त संसार में फैला दिया। विद्या काशी के पंडितों के पास थी परन्तु पुरुषार्थ के बिना निरर्थक हो रही थी। यदि आप भी विद्या को बलवती बनाना चाहते हो तो उसके साथ सदाचार का अवलम्बन करो। वह विद्वान् किसी काम का नहीं जो दुराचार में लिप्त हुआ है। सदाचार ही पवित्र विचार दे सकता है। प्रकाशमान अग्नि दूसरों को प्रकाशमान कर सकती है।

बुझा हुआ लैम्प कभी किसी को प्रकाश नहीं दे सकता। गाड़ियां इंजन के साथ ही चल सकती हैं, जिस दिन इंजन से पृथक् होगई रह जाएंगी। ऋषि दयानन्द के उपदेशों से लाभ उपलब्ध करके हम कुछ काम करने के योग्य हो गए हैं। ऋषि से बढ़ कर काम करना तो कहां हम सबने मिलकर इस समय तक इतना काम नहीं किया जितना अकेला ऋषि कर गया है। इस

का कारण स्पष्ट है कि हम में इतना उच्च सदाचार और तप नहीं जितना कि ऋषि में था । देखा जाता है कि यदि मूर्ख पुरुष पाप करे तो इतनी हानि नहीं होती जितना कि एक पठित पुरुष के मद्यपान से होती है । इसीलिए शास्त्र ने विद्या के साथ सदाचार की शर्त लगा दी है । सज्जनगण ! तुम्हारे पूर्वजों ने धन को हाथ की मैल कहा है । यद्यपि स्वास्थ्य को धन की कुछ पर्वाह नहीं परन्तु स्वास्थ्य से भी अधिक सदाचार का ध्यान रखना चाहिए । परन्तु आज शोक से देखा जाता है कि सदाचार की अपेक्षा धन का अधिक मान है । जब तक आप सदाचार की अपेक्षा धनको निकृष्ट न समझेंगे तुम्हारा कुछ न बनेगा । यही सीधी लाइन है जिस पर चलकर आप सुख पा सकते हैं ।

आचार की रक्षा किस प्रकार हो—अब प्रश्न यह है कि सदाचार आए कैसे ? आचार अधिकतर युवावस्था में भ्रष्ट होता है । जिस प्रकार हलवाई का दूध साधारणतया पहले ही उबाल में कढ़ाई से बाहर होता है इसी प्रकार वीर्य्य का नाश भी बालकपन में होता है । जिस हलवाई ने पहले उबाल में दूध को गिरने से बचा लिया वह फिर अन्त तक हानि रहित हो जाता है । इसी प्रकार जो माता पिता २५ वर्ष तक अपने पुत्रों की ब्रह्मचर्य्य की रक्षा करते हैं उनके पुत्र आयु पर्यन्त

सदाचारी रहते हैं। यही भाइयो! ऋषि ने तुम्हारे सामने अपने जीवन का आदर्श रख दिया है। अब यदि इन व्यर्थ बातों को नहीं छोड़ोगे मर जाओगे। तुम ने आर्य्यसमाज में आकर संसार के उद्धार का बीड़ा उठाया है। इसीलिए तुम जिन विचारों को संसार में फैलाना चाहते हो पहले स्वयं उनका पालन करो॥
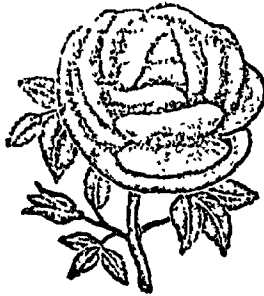
जीवन यात्रा।

सफलता और असफलता में भेद—संसार में यदि आप गूढ़ दृष्टि से देखेंगे तो बिना सफलता के मनुष्यों के लिए दुःख होता है। और जो संसार में सफलता को प्राप्त कर लेते हैं उनको सुख होता है। सफलता को संस्कृत में सामर्थ्य और असफलता को असमर्थ कहते हैं। शास्त्र ने बतलाया है कि "हेयम् दुःखम्" यदि इस बात को जान लिया कि दुःख क्या है। और उसका त्याग कर दिया तो सफलता को प्राप्त हो गए। यदि जानकर भी न छोड़ा तो असमर्थ रहकर परीक्षा में अनुत्तीर्ण होगए, दुःख के कारण का पहले समझना और फिर उसको परित्याग करना भी सफलता ही है। जिस समय कोई पुरुष अपनी असफलता को अनुभव कर रुदन करता है वही उसके लिए सफलता की पहली सीढ़ी है। इस पर मैं दो उदाहरण देता हूं। एक धनवान् ने दो मल्ल (पहलवानों) के लिए ५००) का पारितोपिक नियत किया, कि जो जीतेगा वही इसको ग्रहण करेगा। अब दोनों पहलवान मुकाबिला की तैय्यारी करते हैं। दोनों की यही इच्छा होती है कि एक दूसरे को गिरा लें। परन्तु जीतना एक ने ही है। लोगों के संमुख उनकी कुश्ती होती है, दर्शकों के देखते २ एक पहलवान दूसरे

को गिरा लेता है। उसके मुख की ओर देखो और जो गिरा है उसकी ओर भी ध्यान से देखो। सफलता प्राप्त मुख पर अखाड़े की मिट्टी बहुत अच्छी लगती है उसकी छवि प्रसन्नता से दुगनी होरही है। मुख की कांति प्रसन्नता-पूर्ण दीख पड़ती है। परन्तु जो गिरा है उसके दुःख तथा खेद का कोई ठिकाना नहीं, असफलता ने उसको इतना शोकमग्न बना दिया है कि उससे अब उठा भी नहीं जाता। यद्यपि यह कोई बड़ी बात न थी वह दूसरी बार जीत जाएगा। यह एक शारीरिक सफलता का उदाहरण है। दूसरा उदाहरण विद्या की सफलता को ले लें। विद्यार्थी परीक्षा देते हैं एक उत्तीर्ण दूसरा अनुत्तीर्ण होजाता है॥

अब एक का मुख सफलता के कारण प्रफुल्लित और सुन्दर दृष्टिगोचर होरहा हैं और उससे जो भी मिलता है अपनी सफलता का वर्णन करता है, परन्तु दूसरा बहुत उदास है और वह किसी को बताता भी नहीं कि पास नहीं हुआ, क्यों? इसलिए कि यह अपने इरादे में चूक गया है॥

संसार के अन्दर सफलता एक बड़ा मूल्यवान् पदार्थ है। यदि संसार को एक अखाड़ा मान लें तो हम इस अखाड़े के पहलवान हैं। हमें इसमें सफलता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। जिस प्रकार अखाड़े के पहलवान

और महाविद्यालय के विद्यार्थी का कोई विशेष लक्ष्य है इसी प्रकार संसार में हम सबका कोई विशेष उद्देश्य है जिसके लिए हमें मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है परन्तु शोक कि हम यथार्थ उद्देश्य को नहीं समझते हमारी दशा तो ठीक उस पुरुष के समान है जो बड़ी तेज़ी से भागा जा रहा है, लोग उसे पूछते हैं कि कहां जा रहे हो। वह उत्तर देता है कि मुझे कुछ पता नहीं। आप लोग भी इस पुरुष पर हंसेंगे परन्तु आप अपनी दशा पर विचार करें कि आपकी क्या गति है।

स्वामीजी महाराज फरुखाबाद प्रातः ४ बजे जा रहे थे। मार्ग में दो चार जन्टलमैंन मिले उनसे पूछा कि कहां जा रहे हो ? उत्तर दिया कि "यूंही" कोई विशेष लक्ष्य नहीं। परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि इरादा जब तक क्रिया के साथ न हो उसका फल नहीं हो सकता। शारीरिक में लिखा है कि भोजन धीरे २ खाओ परन्तु उसका स्वाद अच्छी प्रकार लो, परन्तु बाबू लोगों को स्वाद कहां ? साढ़े नौ बज चुके हैं कचहरी का समय होचुका है जल्दी २ ग्रास अन्दर फैंकते जाते हैं इसका परिणाम यह होता है कि भोजन का पूरा लाभ नहीं हो सकता। तो मैंने आपको बतलाया कि प्रत्येक क्रिया के संमुख उसका लक्ष्य होना चाहिए। प्रश्न स्पष्ट है:—

जीवन का उद्देश्य क्या है ? हमारे जीवन का

उद्देश्य क्या है ? हम किस प्रकार उसमें सफल हो सकते हैं । सफलता और असफलता प्रत्येक सांसारिक कार्य्यों के समान यहां भी विद्यमान हैं । मृत्यु का भय हर समय लगा रहता है । न्यायशास्त्र ने एक उदाहरण दिया है कि बिल्ली को देख कर कबूतर की आंखें बन्द कर लेने से बिल्ली का भय दूर नहीं हो सकता । ठीक इसी प्रकार जीवन उद्देश्य से अनभिज्ञ रहने से मृत्यु टल नहीं सकती । निश्चय रूप से यह जानते हुए कि आपने एक दिन नहीं रहना, आप उद्देश्य से असावधान हैं नहीं सोचते कि हम मृत्यु के डर से किस प्रकार बच सकते हैं । क्या मृत्यु से बचने का उपाय डाक्टरों वैद्यों के पास है ? यदि डाक्टरों अथवा वैद्यों के पास मृत्यु की औषधि होती तो बड़े २ राजा महाराजा न मरते, तो क्या फिर मृत्यु का कोई उपाय नहीं ? उपाय अवश्य है । महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में एक दृष्टान्त दिया जाता है:—

एक माता का पुत्र मर गया, उसको महात्मा बुद्ध का पता मिला । वह अपने पुत्र के मृतक शरीर को लेकर महात्मा बुद्ध के पास आई और कहा इसे जीवित कर दो । महात्मा ने उत्तर दिया कि मैं इसे जीवन प्रदान कर दूंगा यदि आप थोड़ी सी मिट्टी उस गृह से ले आएं जिसका कोई न मरा हो, वह स्त्री सारे नगर में फिरी परन्तु उसे कोई घर ऐसा न मिला जिसका कोई न मरा हो, उस

पर उसे शांति आगई कि प्रत्येक के शिर पर काल का शस्त्र लटक रहा है अतः कोई मनुष्य किसीको नहीं बचा सकता। निर्बल को बलवान् तो बचा सकता है परन्तु बलहीन नहीं। परमात्मा सबसे बलवान् है मृत्यु पर भी उसका पूर्ण अधिकार है इसलिए उसकी शरण में जाने से हम मृत्यु से बच सकते हैं।

जो परमात्मा की सत्ता को नहीं समझते उनको मृत्यु नहीं छोड़ती। मृत्यु का भय असफल के लिए दुःखदाई है। जिसके पास रावलपिंडी का टिकट हो और उसको लाहौर में गाड़ी से उतार दिया जाए उसको तो दुःख होगा, परन्तु जिस समय रावलपिंडी में उसे उतारा जाता है वह बहुत प्रसन्न होता है और स्टेशन आने से पूर्व ही अपने वस्त्र आदि संभाल कर तैयार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार यह जीवन-यात्रा है। जब तक हमने मृत्यु की व्यवस्था नहीं समझी हम मृत्यु के भय से रोते हैं परन्तु जब हमने जीवन मरण की समस्या को समझ लिया सारे भय दूर होजाते हैं जिस परमात्मा के शासन में जल पृथ्वी आकाश अपनी मर्य्यादा को नहीं छोड़ते उसकी शरण में जाने और उससे लौ लगाने से मृत्यु दुःखदाई नहीं रहती॥

उपनिषदों में एक दृष्टान्त आया है कि राजा को रात्रि में स्वप्न आया कि वह एक शृगाल के भय से

मैदान में भाग रहा था। दौड़ते २ उसको एक वृक्ष मिल गया वह उस पर चढ़ गया और उसे शान्ति आगई परन्तु नीचे दृष्टि की तो क्या देखता है कि सर्प मुंह खोले बैठा है। दूसरी ओर काले और श्वेत दो चूहे वृक्ष की जड़ को खोखला कर रहे हैं।

वृक्ष के ऊपर मधु का छत्ता है ऊपर देख रहा था कि मधु की एक बूंद उसके मुंह में पड़ गई सारे दुःख भूल गया मधु का स्वाद ले ही रहा था कि इतने में उसकी आंख खुल गई। अब वह सोचता है कि क्या स्वप्न है? उपनिषद्कार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वह मैदान जिसमें राजा भाग रहा था यह 'संसार' है। वह शृगाल जिसके भय से भाग रहा था "मृत्यु" है। वृक्ष मनुष्य की आयु है। सर्प मृत्यु की चिन्ता, काले और श्वेत चूहे रात दिन हैं जो मनुष्य की आयु को काट रहे हैं। जो दिन व्यतीत होता है यही आयु को न्यून करता है। मक्खियां शरीर के रोग हैं इतने कष्ट होते हुए भी मनुष्य इनको भूल जाता है किस लिए? मधु की बिन्दुरूप इन्द्रियों के विषय से।

भर्तृहरिजी ने कहा है कि दिन और रात्रि के चक्कर में आयु व्यतीत होरही है। सामने देख रहा है कि अमुक वृद्ध होरहा है अमुक का पुत्र मर गया इन दशाओं को देखकर भी भयभीत नहीं होता इसका कारण केवल यह

है कि मनुष्य संसार के चक्कर में आया हुआ है । जिस प्रकार एक मदिरा पीनेवाला मान अपमान का तनक भी विचार नहीं करता, इसी प्रकार संसार के मोहरूपी मद्य में मनुष्य मृत्यु की पर्वाह नहीं करता ।

छान्दोग्य-उपनिषद् में आया है कि आत्मा जन्म और मरण के बंधन से परे है । जन्म और मृत्यु तो शरीर का है । इसलिए कहा है कि शरीर के आरोग्य होने पर ही उसका स्मरण करो ताकि अन्त अच्छा हो और अन्त समय में उसका स्मरण हो । जो लोग आयु भर सांसारिक व्यवहारों में लिप्त रहते हैं उनको अन्त में भी वही स्मरण आते हैं । इसलिए वह समय बहुत बुरी तरह व्यतीत होता है । महात्मा कृष्णचन्द्र ने कहा है कि प्रभु का स्मरण अन्त समय अवश्य होना चाहिए । एक युवक जो कालेज में पढ़ता है डाक्टर उसकी दाढ़ निकालने लगे और उस समय उसको कहे कि अब कालेज की ओर ध्यान कर, पीड़ा से क्लेशित विद्यार्थी को कालेज का स्मरण नहीं हो सकता । ऋषि दयानन्द जिसके सारे शरीर पर छाले पड़ चुके हैं प्राणान्त होने में १० मिंट की देर है उस समय भी उनके मुख से "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो," ही निकलता है ।

यह है अभ्यास की शक्ति । अफ़ीम साधारणपुरुषों के लिए विष है परन्तु जिनका स्वभाव हो चुका है

उनके लिए अफ़ीम एक भोज्य पदार्थ है। इसी प्रकार यदि प्रभु का अभ्यास करोगे तो मृत्यु के समय वही स्मरण होगा। और उस समय मृत्यु का भय न रहेगा। आप चील को प्रति दिन देखते हैं कि जब उड़ती है तो उसके पंख नहीं हिलते क्योंकि उसको अभ्यास हो चुका है। मुरग़ाबी जल में रहती है परन्तु जल उसके उड़ने में बाधक नहीं होता, परन्तु एक काक यदि जल में डुबकी लगाए तो उसके लिए उड़ना कठिन होजाता है। यह है अभ्यास की शक्ति। इसी तरह जैसा आयु पर्य्यन्त आपने अभ्यास किया है वैसा ही चित्र मृत्यु के समय आपके सामने प्रस्तुत हो जाएगा। यदि आपने फ़ोटो खिचवाने के समय आंखें बन्द कर ली हैं तो चित्र में भी आंखें बन्द रहेंगी। जैसे कर्म्म किए हैं वैसा ही चित्र अन्त समय खिच जाएगा। उस समय न किसी वकील की आवश्यकता होगी न बैरिस्टर की। अपराधी स्वयमेव स्वीकार कर लेता है कि वस्तुतः मैंने अमुक खोटे कार्य्य किए थे। मैंने बहुतेरे लोगों से उन खोटे कर्म्मों को छुपाया परन्तु शोक कि आज वह सब प्रकट होगए और जिनके लिए मैंने यह पाप किए थे वह भी आज मेरा साथ नहीं देते। इसीलिए शास्त्र कहते हैं कि माता पिता स्त्री पुत्र सबकी सहायता करो, परन्तु धर्म्म के अनुसार। किसी के लिए अधर्म्म न करो। यदि

अधर्म्म के साथ उनकी सहायता करोगे तो तुम्हें कष्ट होगा परन्तु शोक हम परमेश्वर से भय नहीं करते प्रत्युत मनुष्यों से भय करते हैं । जब कभी कोई बुरा काम करने लगते हैं तो चारों ओर देखते हैं कि कोई मनुष्य तो नहीं देखता । हम दो आंखों वाले से भयभीत होते हैं परन्तु नहीं जानते कि वह परमात्मा जिसकी व्यवस्था शास्त्रों ने यह की है कि सब ओर उसकी चक्षु है वह हमें सब ओर से देख रहा है । एक विचारशील पुरुष ने कहा है कि जितने पाप के कार्य्य हैं सब अन्धेरे में होते हैं प्रकाश में नहीं । प्रकाश में पाप का क्या काम ? आत्मा में परमात्मा का प्रकाश है । पाप और पुण्य की अवस्था हमको दूसरों से छिपा सकती है परन्तु अपने से नहीं छिप सकती । आप जानते हैं कि आपने क्या २ कर्म्म किए हैं उसी प्रकार मैं भी जानता हूं परमात्मा सबके मन को जानने वाले हैं इसलिए वह उनके लिए सब एक रस हो जाता है । उपनिषद् कहते हैं:—

श्रोत्रस्य श्रोत्रम् मनसो मनः ।

वह चक्षु की चक्षु, कानों का कान, और मनों का मन है । आपके मन में जो बात है भगवान् उसको जानते हैं । इसी उपनिषद् ने कहा है:—

यो भूतश्च भव्यश्च सर्वदा तिष्ठति ।

वह परमात्मा कैसा है? परमात्मा भूत और भविष्यत् के चक्कर में नहीं आता उसके लिए सब एक रस वर्त्तमान है। वर्त्तमान क्या है? कोई नहीं बतला सकता। भूत और भविष्यत् में जिसने भेद किया है वही वर्त्तमान है। वर्त्तमान प्रतीत नहीं होता परन्तु सदा बना रहता है इसी प्रकार परमात्मा प्रतीत नहीं होता परन्तु तुम्हारे पास रहता है तो फिर उससे असावधान होकर किस प्रकार सुख पा सकते हो। लोग कहते हैं कि योरूप के नास्तिक किस प्रकार सुख पा रहे हैं? मैं कहता हूं कि यह ठीक नहीं हैं जिस प्रकार आप उन्हें नास्तिक समझ रहे हैं वह नास्तिक नहीं हैं। और जो वास्तव में नास्तिक हैं वह सुख नहीं पा रहे! उनके सुख दुःख का अनुमान मैं और आप नहीं कर सकते। शास्त्र ने कहा है कि कृतघ्नता से अधिक कोई पाप नहीं। किसी के उपकार का न जानना सब मतों में पाप माना गया है। परमात्मा ने हम पर क्या कम उपकार किए हैं? जिन वस्तुओं का जीवन से सम्बन्ध है वह उसने सब के लिए प्रदान की हैं। वायु के बिना जीवन एक घण्टा नहीं रह सकता वायु जैसी अमूल्य वस्तु उसने सबके लिए मुफ़त दी है। प्रकाश न हो तो संसार में अन्धकार फैल जाए। प्रकाश के दाम का अंदाज़ा कौन कर सकता है, परन्तु परमात्मा ने प्रकाश भी अधम से अधम

मनुष्य के लिए प्रदान किया है। कोई आपको १०) रु० मासिक की नौकरी देता है आप नित्य उसके आगे शिर निवाते हैं, परन्तु वह परमात्मा जिसने इतनी बहुमूल्य वस्तुएं आपको और सारे संसार को दी हैं यदि उसका चिन्तन न किया जाए तो आप से अधिक पापी और कौन हो सकता है। वेद कहते हैं कि अन्त समय में 'ओ३म्' का स्मरण करो, परन्तु हमको भूमि पर पड़े हुए भी गाड़ी घोड़ों और पुत्र पौत्र की ही चिन्ता शोकातुर कर रही है। ऋषियों ने तो ऐसे नियम बनाए थे कि आयु भर मनुष्य प्रभु स्मरण करता रहे, परन्तु हम उनका पालन नहीं करते। जातकर्म्मसंस्कार के समय बालक की जिह्वा पर 'ओं और कान में भी यही शब्द कहा जाता है इसका आशय क्या है? यही कि हे बालक! यह मनुष्य जन्म तुम्हें परमात्मा को स्मरण करने के लिए मिला है परन्तु हम इसको भूल कर कष्ट उठा रहे हैं॥

गृहस्थ का बोझ हम आयु पर्य्यन्त उठाते हैं किन्तु वेदों ने नियम बांध रखे हैं कि २५ वर्ष ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करके फिर २५ वर्ष गृहस्थ और उसके पश्चात् वानप्रस्थ और फिर संन्यास। परन्तु हम २०० वर्ष के होजाएं तो भी हमारी तृष्णा गृहस्थ से पूर्ण नहीं होती। गृहस्थ का बोझ तो मरते समय तक नहीं छोड़ते और फिर कहते हैं कि प्रचार नहीं होता। भला प्रचार का

काम तो स्वतन्त्र संन्यासियों का है परन्तु अब करने लगे मैं और आप। जिनको धर्म्म की अपेक्षा व्यक्तियों का अधिक ध्यान है। यही कारण है कि सचाई को हम लोग निर्भय होकर नहीं प्रकट करते। धर्म्म के प्रचार के लिए सब से अधिक पुष्ट साधन 'सत्य' है। आपको विदित है कि महाराजा अशोक ने किस प्रकार बुद्ध धर्म्म को ग्रहण किया था?

एक बार मैं छत्तीसगढ़ में गया। वहां के राजा भी कबीरदासी थे मैंने मालूम किया कि यहां के राजा का इस मत में कैसे प्रवेश होगया। उत्तर मिला कि एक बार एक कबीरदासी ने एक झूठी साक्षी दे दी। उसके प्रायश्चित्त में सब कबीरपन्थी नदी के तट पर जाकर भूखे रहे। इस तप का राजा पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह भी कबीरपन्थ में दाखिल होगया॥

राजा अशोक एक समय वन में मृगया के लिए गए। उसी वन में बुद्धभिक्षु रोगी पशुओं की मरहम पट्टी कर रहे थे। राजा को आते देख कर सब पशु बिलबिला उठे। इन पशुओं की यह अवस्था देख कर राजा पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उसने बुद्ध धर्म्म को ग्रहण कर लिया। लंका में बुद्धमत के प्रचार का विचार हुआ प्रश्न उठा कि कौन जाए? सब धार्मिक पुरुषों ने प्रस्ताव किया कि राजा का पुत्र जाए तब बहुत प्रचार होगा।

वह तैयार होजाता है। थोड़ी दूर जाकर वह लौट आया। लोग समझते हैं कि महेन्द्र भयभीत होकर वापिस आ गया है परन्तु वह उत्तर देता है कि मेरे मन में तो यह विचार उत्पन्न हुआ है कि मैं तो पुरुषों में प्रचार करूंगा परन्तु स्त्रियों में कौन करेगा ? इसलिए वह अपनी स्त्री को संन्यासिन वना कर अपने संग ले जाता है। इसका परिणाम जो कुछ हुआ वह आपके संमुख हैं।

सज्जनगण ! मृत्यु के अखाड़े को जीतने और संसार में वैदिकधर्म्म का प्रचार करने के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता है। यदि आप अपने पुरुषार्थ में पास नहीं होते तो रिआयती पास हो जाओ। ताकि यह मनुष्य जन्म तो दोबारा मिल जाए।

सब शक्तियां आपमें विद्यमान हैं। इनके प्रकाश की आवश्यकता है जिस समय परस्पर सहानुभूति का प्रादुर्भाव होगा "स्वार्थ" स्वयमेव दब जाएगा। उपकार का भाव मन में आते ही स्वार्थ का भाव दब जाता है। नौशेरवां न्याय के लिए बड़ा प्रसिद्ध था। कहते हैं कि उसने मकान पर एक संगली बांध रक्खी थी और खुली आज्ञा थी कि जिसको भी मेरे राज्य में कोई शिकायत हो उसका पूरा न्याय होगा। एक दिन एक वृद्ध स्त्री का पुत्र राजा के पुत्र की गाड़ी के नीचे आकर मर गया। वृद्धा ने जंजीर हिला कर न्याय की प्रार्थना की और कहा

कि जिस प्रकार मेरा पुत्र मारा गया है इसी प्रकार इसको मारा जाए। राजा ने आज्ञा दे दी। उसी समय वृद्धा का मन प्रेममय होगया और उसने राजपुत्र को छाती से लगा लिया और कहा कि मेरा पुत्र यही है॥

सुकरात ने कहा कि वही मनुष्य सफलता को प्राप्त होगा जो दो वस्तुओं को भुला देगा एक अपनी नेकी और दूसरी दूसरे की बदी। शत्रु को मारने के लिए उपकार का आरा चलाओ शत्रुता दूर होजाएगी। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि घृणा से घृणा बढ़ती है, प्रेम से घृणा दूर होती है।

इसलिए संसार में यदि सफलता चाहते हो तो दो वस्तुओं को सदा ध्यान में रक्खो (१) परमात्मा (२) मौत। मृत्यु परमात्मा के आधीन है। मृत्यु को हर समय स्मरण रखने से पाप नहीं होता। क्या आप नित्य प्रति नहीं देखते कि जिस समय श्मशानभूमि में जाते हैं हमारे विचार मृत्यु और परमात्मा की ओर लग जाते हैं और उस समय पाप का लेश भी मन में नहीं रहता। इसी प्रकार जो मनुष्य मृत्यु को हर समय ध्यान में रखते हैं पाप उनके निकट नहीं फटकता। यह विचार भी कुछ पुष्ट नहीं कि मनुष्य संसार के सारे कामधन्धों को छोड़ कर व्यर्थ पड़ा रहे। भलाई और प्रभु का चिन्तन प्रत्येक स्थान और दशा में हो सकता है। हम प्रतिदिन देखते हैं कि पोलिस और कलक्टर का भय उनको है जो पापी

हैं। जो अपराधी नहीं उनको न तो पोलिस को भय न मजिस्ट्रेट का डर। इसी प्रकार यदि संसार में रहते हुए हम भगवान् का स्मरण करते और पापों से पृथक् होते हैं तो हमको मृत्यु से क्या भय?

आपका एक भाई रोगी हो जाता है आप उसके लिए वैद्य अथवा डाक्टर को बुलाते हैं परन्तु लाभ कुछ नहीं होता और लाभ हो भी कैसे? जब कि अन्धेरी कोठरी में बैठ कर उसके मन को कोई काट रहा है। माता पिता कहते हैं इसका रोग हमको लग जाए परन्तु लगे कैसे? जिसने पाप किए हैं फल तो उसने पाना है॥

एक कवि ने बतलाया है कि जगत् में कैसी अन्ध-परम्परा चली हुई है, जहां नित्य सम्बन्ध है वहां अनित्य समझ रहे हैं और जहां अनित्य है वहां उसे दृढ़ता से पकड़ा हुआ है। धर्म्म जिसने लोक तथा परलोक में सुखी रखना है उसको तो भूले हुए हैं परन्तु अधर्म दिन रात कर रहे हैं॥

स्वामी स्वरूपानन्द ने जब तहसीलदारी से पैंशन ली और रुपया पैसा अपनी स्त्री को देकर नगर से चलने लगे तो उसकी स्त्री ने कहा कि आप बाहर न जाएं। स्वामी ने कहा कि आप भी चलें परन्तु वह न मानी और थोड़े दिनों पीछे उसका देहान्त होगया। फिर उसके पुत्रों ने स्वरूपानन्द को बाहर जाने को रोका और कहा कि हम उद्यानमें आपके लिए कुटिया

तैयार करा देते हैं परन्तु उन्होंने स्पष्ट बतला दिया कि मेरा जो कर्त्तव्य था वह मैं पूर्ण कर चुका अब मैं तुम्हारे बच्चों के लिए अपने उद्देश्य को भूल नहीं सकता क्योंकि उनका लालन पालन अब तुम्हारा धर्म्म है।

वृद्धों के लिए चाहिए तो यह था कि यदि सारी आयु में उन्होंने कोई तोशा साथ नहीं लिया तो न्यून से न्यून इस आयु में ही अपनी यात्रा की तैयारी करते। परन्तु अब भी वह बालकों के साथ क्रीड़ा में लगे हैं। वह संसार को छोड़ने को तैयार नहीं यद्यपि संसार उनसे छुड़ा लिया जाएगा।

इसलिए भद्र पुरुषो! यदि संसार यात्रा से सफलता-पूर्वक पार होना चाहते हो तो अभी से सफल होने के लिए यत्न करो। असफलता के जीवन में मरना अच्छा नहीं। माता, पिता, स्त्री, पुत्र आदि सब अपने स्वार्थ के मित्र हैं इसलिए उनके साथ इतना ही सम्बन्ध रखो जिस से यथार्थ उद्देश्य दूर न हो सके। सब के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा वैदिकधर्म्म ने प्रतिपादन किया है। यदि इससे अधिक सम्बन्ध रखोगे और इनके मोह माया में अधिक फंसोगे तो यह दुर्लभ्य मनुष्य जो कोई जन्मों के पीछे प्राप्त हुआ है व्यर्थ चला जाएगा और अन्त में चीखते चिल्लाते असफल जीवन व्यतीत कर शरीर छोड़ दोगे।

मोक्ष मार्ग।

कार्य्य में असिद्धि क्यों है:—जो रोगी औषधि के कड़वापन पर ध्यान देता है वह निरोगी नहीं हो सकता। औषधि का सम्बन्ध स्वाद से नहीं किन्तु रोग से है। इसी प्रकार जो श्रोतागण व्याख्यानों की सुवक्तृता और उनकी मिठास का विचार करते हैं, वह वास्तव में कोई उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। उपदेश वही उत्तम हो सकता है जिससे आत्मा पर चोट लगे, परन्तु प्रायः देखा जाता है कि व्याख्यान उसका पसंद किया जाता है जो हंसी ठट्ठा की बातें अधिक करे, परन्तु व्यासदेव जी कहते हैं कि सुधार ऐसी बातों से नहीं हो सकता जिसने मोहनभोग खाकर ज्वर चढ़ा लिया है उसका ज्वर कुनीन जैसी कड़वी औषधि से उतरेगा। भाइयो! सत्यमार्ग पर नहीं आ सकता जब तक कपिल ऋषि के सिद्धान्तों का पालन नहीं किया जाता, वह कहते हैं कि पुस्तक, पढ़ने वाले के कभी हाथ में कभी बगल में और कभी शिर पर होती है परन्तु उपदेशजनक बातें हर समय और हर स्थान में उसके साथ रहती हैं। यदि उपदेश का क्रम टूट जाए तो संसार में अन्धपरम्परा चल जाए। अंधे को अंधा मार्ग नहीं दिखा सकता। चक्षुविहीन पुरुष को आंखों

वाला ही पथ दर्शा सकता है। इस समय श्रोता और वक्ता कोई भी दोष से रहित नहीं। न वक्ता दिली लग्न और शुद्ध आचार से उपदेश करते हैं और न श्रोता सच्ची श्रद्धा से सुनते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि सैंकड़ों उपदेश श्रवण करने पर भी मन पर कोई भाव अङ्कित नहीं होता है। क्या कारण है कि महर्षि का उद्देश्य फलदायक नहीं होता? कारण यही कि अच्छे उपदेशक नहीं। अकेला ऋषि जो काम कर गया है सैंकड़ों उपदेशक होने पर भी उस जैसा किंचित्मात्र भी नहीं होता। उपदेशकों ने केवल व्याख्यान देना अपना कर्त्तव्य समझ रखा है और श्रोता भी ऐसे ही मिले हैं कि जो सुनने से अधिक कोई कर्त्तव्य नहीं समझते। परन्तु उपनिषद् में कहा है कि केवल सुनने से कुछ नहीं बनेगा जब तक मननशील न होंगे। जो मनन नहीं करता वह सच्चा श्रोता नहीं। गौ एक ही समय में घास जल्दी २ खा लेती है परन्तु धीरे २ जुगाली करती है यही उसके निरोग होने का चिन्ह है। जो गौ जुगाली नहीं करती उसके स्वामी को चिन्ता लग जाती है। इसी प्रकार जो मनुष्य उपदेश सुन कर फिर उस पर विचार नहीं करता उसके सुधार की कोई आशा नहीं। यह तो आपके दोष हैं परन्तु दूसरी ओर वक्ताओं की क्या

दशा है ? प्रतिनिधिसभाएं जैसा भी पुरुष उन्हें मिलता है उसकी आचार व्यवहार, धर्म्म पर श्रद्धा और विद्या की परीक्षा किए विना ही उसे उपदेश काम पर लगा देती हैं । उपदेशक भी जब उसको २५) रुपये मिल जाते हैं तो समझता है कि मैंने सभा को अच्छा उल्लू बनाया है । जब दोनों ओर ही दोष हैं सुधार हो तो कैसे ? फिर शिकायत यह होती है कि आर्य्यसमाज उन्नति नहीं करता । जिन साधनों को तुम सेवन कर रहे हो क्या इनसे उन्नति हो सकती है ? कदापि नहीं । बुद्ध ने अपने शिष्यों को उपदेश दिया कि तुम्हारे जीवन के साथ जनता (पब्लिक) का जीवन है, इसलिए ऐ मेरा उपदेश मानने वालो ! यदि तुम चाहते हो कि संसार में तुम्हारा धर्म फैले तो पहले अपना सुधार करो । जो मनुष्य कुच्छ लाभ करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि पहले लोभ छोड़ें । लोभी मनुष्य कुछ उपलब्ध नहीं कर सकता । महात्मा कृष्ण ने भी इस बात पर बल दिया है । लोग कहते हैं कि पहले उपदेशकों में बड़ा प्रभाव हुआ करता था परन्तु आज नहीं । कारण यह है कि वह अपने उपदेशों का स्वयं पालन करते थे । कोई पुरुष एक महात्मा के पास अपने पुत्र को लाया और कहा कि महाराज यह गुड़ बहुत खाता है इसको उपदेश करें कि छोड़ दे ।

महात्मा स्वयं गुड़ खाया करते थे । कहा कि १५ दिन के पश्चात् लाओ । १५ दिन के अन्दर महात्मा ने आप गुड़ खाना छोड़ दिया और फिर उस लड़के को उपदेश किया । आपने विचारा कि इतने उपदेशों के होने पर भी बुराई बढ़ रही है । अधिक बुराई इसलिए बढ़ रही है कि जो उपदेश करने वाले हैं इनका जीवन स्वयमेव ऐसा नहीं जिसका वह उपदेश करते हैं । यह एक बड़ी भारी रुकावट है जिस कारण हम असिद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

जब संसार का मार्ग बिगड़ा हुआ है तो मोक्ष का मार्ग हमें कैसे प्राप्त हो सकता है ।

स्वतन्त्रता कैसे मिले—एक पापी पुरुष जो सारे अधर्मयुक्त कामों में फंसा हुआ है अपने आपको स्वतन्त्र बतलाता है । यदि यही स्वतन्त्रता है तो फिर बंध किस में हैं । इसी लिए शास्त्र कहते हैं कि उपदेश का अधिकार उस पुरुष को है जो स्वयं दोषों से मुक्त हो, सोते को सोने वाला नहीं जगा सकता । हम चाहते हैं मोक्ष को परन्तु उपासना करते हैं प्रकृति की, जो स्वयं जड़ है और बंधन में है मोक्ष की प्राप्ति कैसे ?

एक राजा जिसको मोक्ष की इच्छा थी वह किसी महात्मा के पास गया और कहा 'भगवन् ! मुझे मोक्ष मार्ग बतलाएं । महात्मा ने कहा फिर आना । राजा फिर गया । उसने फिर आने को कहा । एक दो बार राजा फिर गया उसने

फिर आने को कहा इसी प्रकार राजा को वापिस कर देने पर जब उसे अच्छी तरह जिज्ञासा होगई तो एक दिन महात्मा ने राजा को उसके कर्म्मचारियों समेत अपने शिष्यों से मुश्कें बंधवा दीं और राजा को कहा, कि अपने कर्म्मचारियों की मुश्के खोल दो, राजा ने कहा कि महाराज ! मैं कैसे खोल सकता हूं ? मैं तो आप बंधा हुआ हूं। तब महात्मा ने राजा को बतलाया कि राजा यही प्रकृति की दशा है जिसके तुम उपासक बने हुए हो। प्रकृति स्वयं जड़ वस्तु है वह तुम्हारे बन्धनों को कैसे काट सकती है।

संसार में हम देखते हैं कि छोटे सेवक बहुत हैं परन्तु गवर्नर-जनरल सारे भारत में एक है, परन्तु इच्छा सब की यह है कि मैं गवर्नर-जनरल बन जाऊं, बनता कोई २ है इसी प्रकार मोक्ष की इच्छा रखने वाले अनेक हैं, परन्तु मुक्तजीवन बहुत थोड़े हैं। इसीलिए ऋषियों ने बतलाया है कि संसार की परीक्षा करो, संसार के कर्म्म नित्य नहीं हैं। मेरा सम्बन्ध मेरे मित्र के साथ नित्य नहीं है। यदि सम्बन्ध नित्य होता तो मेरा मित्र न मरता परन्तु परमात्मा का सम्बन्ध हमारे साथ नित्य है ॥

आजकल वैराग्य की बुरी गति हो रही है। कई संस्कृतज्ञ झूठे वैराग्य को ही वैराग्य समझ रहे हैं, परन्तु अंग्रेज़ी वाले कहते हैं कि जितना सत्यानाश किया है

सब वैराग्य ने ही किया है । भला कभी वैराग्य भी सत्यानाश कर सकता है ? यह हमारी भूल है । मुझे मेरी अपनी वस्तु से राग है परन्तु दूसरे की वस्तु से वैराग्य। आप बतलाइए कि इसमें क्या दोष है ? आजकल झगड़ा होरहा है कि ब्राह्मण ही संन्यासी हो सकता है ।

परन्तु स्वामीजी ने लिखा है कि जिसके मन में वैराग्य उत्पन्न होजाए वही संन्यासी है । कहा है कि जो मनुष्य संन्यासी होना चाहे वह एक पुष्प हाथ में लेकर किसी संन्यासी के पास जाकर कहे कि महाराज ! जिस प्रकार यह फूल अपनी शाखा से टूट चुका है उसी प्रकार मैंने संसार से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया है। जिसके मन में परमात्मा की अत्यन्त भक्ति हो जाए जो ब्रह्मनिष्ठ होजाए, वही संन्यास का अधिकारी है। यह सब बातें महात्मा दयानन्द में मिलती थीं । जैसा कि मैंने पहले कहा कि मुक्ति का हरएक अधिकारी है परन्तु मुक्ति साधनों से मिलती है जो साधन करेगा वह फल पाएगा । कूप में से जल निकालना है यदि डोल टूटा हुआ है अथवा रस्सी निर्बल है तो जल नहीं निकलेगा, जल निकालने के लिए दृढ़ रस्सी की आवश्यकता है मुक्ति के उपलब्ध करने के लिए कठिन साधनों के सेवन की आवश्यकता है । इन साधनों का हम संसार में रहते हुए भी पालन कर सकते हैं ॥

अरस्तु कहता है कि जब तक मनुष्यों को पूर्ण विश्वास अर्थात् पूर्ण निश्चय न हो वह मुक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता । पूर्ण निश्चयात्मक होने के लिए ४ बातों की आवश्यकता है (१) परमात्मा को हर समय स्मरण रखो, (२) मृत्यु को एक पल भी न भूलो, (३) जिसने तुम्हारे साथ बुराई की हो उसको भूल जाओ, (४) जिसके साथ तुमने कुछ उपकार किया है उसको भी भूल जाओ ।

महात्मा बुद्ध ने कहा है कि घृणा से घृणा दूर न होगी प्रत्युत प्रेम से घृणा दूर होगी । यही बात योगिराज कृष्ण ने कही है और इसी को महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में घटाया है । एक बार एक पुरुष ने स्वामीजी को क्रोधित हो गाली निकाल दी । स्वामी जी मुसकरा पड़े । वही पुरुष कुछ देर पश्चात् उनके चरणों में गिर पड़ा और कहा कि महाराज ! आपके धैर्य्य ने मुझे मोहित कर लिया है । स्वामीजी ने कहा कि भाई तुमने गाली दी, मैंने नहीं ली, गाली तुम्हारी तुम्हारे पास वापिस चली गई । मुझे खेद किस बात का हो ? आपने देखा किस प्रकार भलाई से घृणा दूर होती है । मैं आपको यह बतला रहा था कि सच्चे उपदेशक नहीं, ज़रा उपदेशक मण्डली में बैठकर देखो क्या २ बाते करते हैं । अमुक स्थान गए अच्छा भोजन नहीं मिला, अमुक

स्थान पर दूध प्राप्त नहीं हुआ। अच्छे भोजन और दूध के लिए यदि उपदेशक बनना था तो कुछ और काम कर लेते परन्तु दुःख तो यह है कि जब कोई स्थान न मिले तो उपदेशक बन जाते हैं। यह अपनी जगह सच्चे हैं। जब तक सच्चे उपदेशक तैयार न करोगे काम न चलेगा। चाहे आज तैयार कर लो, चाहे १०० वर्ष के पीछे, सफलता उसी समय होगी जब त्यागी उपदेशक काम करेंगे। जिस समय हम श्मशान में जाते हैं न मित्र की मित्रता, न शत्रु की शत्रुता संग रहती है। मृत्यु का दृश्य देखकर हम सम अवस्था में आजाते हैं। जहां परमात्मा है वहां मृत्यु का दृश्य और जहां मृत्यु है वहां ही भय है। यह दो बातें तो हर समय आपके संमुख रहनी चाहिएं। इन्हीं विचारों को मन में रखने से समस्त दुराचारों से बच सकते हैं और संसार के प्रलोभन उसे गिरा नहीं सकते, अन्यथा पग २ पर गिरावट विद्यमान है॥

वेदों ने मनुष्य जगत् के लिए ४ अवस्थाएं नियत की हैं जिनमें प्रत्येक मनुष्य को चारों पार करनी चाहिएं ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। इनके मुकाबले में धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष हैं। मोक्ष प्राप्ति की अवस्था में संन्यास या त्याग की अवस्था है और यही प्रत्येक की अन्तिम इच्छा है, अनुभव बतलाता है कि जितना मनुष्य इस सृष्टि में फंसता है, उतना ही

प्रेम बढ़ता है, और उतना ही इसके वियोग से दुःख होता है । परन्तु ज्योंही मनुष्य सृष्टि से निकल कर परमात्मा की सृष्टि में जाता है, संन्यासी कहलाता है । वेद ने बतलाया है कि यदि तुम संसार को प्रसन्नता से छोड़ दोगे तो आराम पाओगे, और छोड़ना अवश्य है प्रसन्नतापूर्वक छोड़ो या खेदसे । दयानन्दने अपनी इच्छा से जीवन छोड़ा । वह शान्तिपाठ करते और "तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहते संसार से गए । परन्तु इनके मुकाबले में ऐसे भी महान् पुरुष हो गुज़रे हैं जिन्होंने रोते धोते प्राण दिए । मनुष्य अधोगति को प्राप्त होगा या मोक्ष को यह उसके अन्त समय से पता लगता है

जिनके जीवन नियमानुसार नहीं, उनकी मृत्यु भी नियमपूर्वक नहीं हो सकती । स्वामी दयानन्द किस उदार भाव के थे इसका प्रमाण आर्य्यसमाज के नियमों से लगाया जा सकता हैं । स्वामी जी ने एक नियम यह रक्खा है "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है" । किसी पुरुष ने उनसे पूछा किस जाति का ? उत्तर दिया कौन सी जाति और कौन सा देश ? सारे संसार का । जो मनुष्य यह कहते हैं कि स्वामीजी ने केवल भारत के लिए काम किया वह वास्तव में ऋषि को उसके उच्च आसन से

गिराते हैं। हां चूंकि वह इस देश में उत्पन्न हुए थे इस लिए सबसे पूर्व उन्होंने अपने काम का लक्ष्य इसी ओर किया यदि वह जीवित रहते तो संसार को अपने कार्य्य का क्षेत्र बनाते।

जिन बातों का स्वामीजी ने प्रचार किया आज ईसाई और मुसलमान उनको मान रहे हैं परन्तु आप इस समय सब से पीछे हैं। इसलिए आवश्यकता हैं कि आप कर्त्तव्य परायण होकर धर्म्म के नियमों का पालन करें। क्षेत्र विद्यमान है केवल काम करने की आवश्यकता हैं। संसार में गृहस्थी भूखे मर रहे हैं परन्तु नामधारी संन्यासी हाथियों पर मौज उड़ा रहे हैं। गृहस्थी के लिए धन महत्त्व का हेतु है परन्तु संन्यासी के लिए धन दुःखदायक है और इसको इसके आदर्श से पतित करने वाला है।

शास्त्रों ने चार प्रकार के कर्म्म बतलाए हैं (१) वह कर्म्म जो न शुक्ल हों और न कृष्ण, ऐसे कर्म्म मोक्ष का कारण होते हैं और संन्यासी अवस्था में ही होसकते हैं। (२) वह शुक्ल कर्म्म जो दुर्व्यसनों के मर्दन के लिए किए जाते हैं, यह ब्रह्मचर्य्य की अवस्था में ही होसकते हैं और गुरुकुल इनका केन्द्रस्थान है जहां गुरु के पास रहते हुए पाप का लेश भी ब्रह्मचारी के पास नहीं आ सकता। (३) कृष्ण और शुक्ल कर्म्म गृहस्थियों के हैं जिनमें पुण्य

और पाप मिला हुआ है (४) जिनके कर्म्म न कृष्ण हैं और न शुक्ल । यह कर्म्म तो करते हैं परन्तु उनकी इच्छा फल की नहीं होती । ऐसे कर्म्म भी मुक्ति के देने वाले होते हैं । आजकल के वेदान्ती निष्कामकर्म्म की बड़ी दुर्दशा करते हैं, परन्तु बुरे कर्म्म निष्काम नहीं होसकते । इस समय संसार में कर्म्म और विज्ञान भिन्न २ काम कर रहे हैं । विज्ञानी लोग बड़े अन्वेपण करते हैं परन्तु चोरी और दुराचार के काम आते हैं । कारण क्या ? केवल यह कि इस विज्ञान में वैदिकधर्म्म का अंश नहीं, जिस दिन कर्म्म के साथ वैदिक ज्ञान मिलेगा उस दिन बेड़ा पार होजाएगा । उस समय न पुलिस की आवश्यकता होगी न न्यायालयों की । प्राचीन काल की एक कथा उपनिषदों में आती है । इसमें एक राजा यहां तक दावा करता है कि मेरे राज्य में न कोई दुराचारी और व्यभिचारी है और न कोई ऐसा पुरुप है जो हवन न करता हो । यह है कल्पतरु ।

जहां भी परमात्मा के भक्त हों वहां उपद्रव नहीं होसकते, परन्तु यह तब हो सकता है जब धर्म्म के साथ विज्ञान मिला हुआ हो ।

धर्म्म के तीन आवश्यक अंग।

कर्म्म का फल कर्त्ता के अनुकूल नहीं होता जो कर्म्म ज्ञानपूर्वक नहीं है। आज भी इसी क्रम में कहूंगा कि भारतवर्ष की दुर्दशा का क्या हाल है ? उपनिषदों में एक वाक्य आया है जिसका तात्पर्य्य यह है कि धर्म्म के तीन स्तम्भ हैं जिनके ऊपर धर्म्म की स्थिति है। (१) यज्ञ (२) पठन पाठन (३) दान। तीनों की अब परस्पर विरुद्ध दशा है।

पहला अंग—प्रथम धर्म्म की व्यवस्था का कौन विचार करे। भारतवासियों में ४ प्रकार के पुरुष हैं और वह सारे निर्बल। एक भाग बड़ा परिश्रमी है परन्तु पेट भर खाने को नहीं है। यदि कोई दिन भर परिश्रम करे और एक समय खाने को न मिले तो क्या वह सुडौल हो सकता है ? विना खाना मिलने के शरीर बन नहीं सकता। चमार और कुलीन ६, ७ करोड़ बलहीन हैं यद्यपि परिश्रमी हैं परन्तु पेट भर खाने को नहीं मिलता। फिर दूसरे भाग के पास धन है परन्तु पचाने की शक्ति नहीं है। एक राजा की गाथा है उसने ५०००) पारितोषिक इसलिए रक्खा हुआ था कि उसके पुत्र को कोई छटांक भर मलाई खिला दे परन्तु पाचक शक्ति न हो। तीसरे भाग में खाने की शक्ति और धन भी है, परन्तु

खाने और पचाने के लिए व्यायाम की आवश्यकता है खाते हैं खूब और धन भी है परन्तु खाकर तकिया लगा कर खूब बैठ रहते हैं। तकिया के समान स्वयं भी तकिया ही बन जाते हैं। शरीर निर्बल और बेडौल हो जाता है। पकाने के लिए व्यायाम और परिश्रम की आवश्यकता है।

चौथा भाग खाता है धन है और पाचक शक्ति भी है, परन्तु मिलाप की शक्ति नहीं, बहिष्टणी शक्ति है परन्तु मिलाप की नहीं। इसी प्रकार दशा सब ओर निर्बल हो रही है। अब धर्म्म का प्रचार कौन करे? धर्म्म से ग्लानि हो जाती है। सारे लोग धर्म्म को विविध दशा में वर्णन करते हैं, सुनने वालों को भ्रम हो जाता है कि बात क्या है? सबने भिन्न २ उत्तर दिए हैं। उपनिषदों को उठाओ। महाभारत से पूर्व जो ग्रन्थ बने और सैंकड़ों ऋषि मुनि हुए एक ही प्रकार का मत था। वेदों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ४ प्रकार के धर्म्म हैं इनके बिना और कोई नहीं। आज सब प्रकार के धर्म्म प्रचलित हो गए हैं, धर्म केवल एक ही हो सकता है, शेष अधर्म्म है। धर्म्म जीवन है अधर्म्म मृत्यु। धर्म्म एक ही है और अधर्म्म अनेक हैं। जापान में भी बालक माता के गर्भ में ९ मास ही रहता है और जीता है। परन्तु मृत्यु भिन्न प्रकार की है। यद्यपि जीवन एक

प्रकार का है युवक अथवा वृद्ध भिन्न अवस्थाएं हैं। स्वास्थ्य एक प्रकार का है परन्तु रोग अवस्था अनेक प्रकार की है। धर्म्म स्वास्थ्य है परन्तु अधर्म्म रोग है। स्वास्थ्य चित्त पुरुष को कोई नहीं पूछता परन्तु रोगी को सब ही पूछते हैं। दूध श्वेत होता है परन्तु कोई प्रश्न नहीं करता कि दूध क्यों श्वेत है। एक ही प्रकार की वस्तु में प्रश्न नहीं उठाया जाता। निर्बलता में कारण वर्णन किए जाते हैं। खुराक़ एक है और कुपथ्य अनेक। निरोगी रोटी मांग कर मिठाई भी लेने को तैयार है और चने भी चबा सकता है। रोगालय में जब रोगी जाता है तो किसी को मुंगी किसी को चने का पानी और किसी को सागूदाना आदि बतलाते हैं। धर्म्म आरोग्यता है और अधर्म्म रोग है। मित्रता एक है पर शत्रुता अनेक हैं मित्रता का कारण कोई नहीं पूछता परन्तु लड़ाई अथवा शत्रुता के कारण अवश्य पूछे जाते हैं। धर्म्म एक है किसी देश का हो। धर्म हर जगह मनुष्यमात्र का एक है। विचारपूर्वक काम नहीं किया अधर्म्म हो गया। अधर्म्मों से भेद तथा लड़ाई होगी। जहां भूल होगी वहां अधर्म्म देख लो।

दस लड़कों से प्रश्न पूछें, ५० से प्रश्न करें, ठीक उत्तर एक ही होगा। अशुद्ध उत्तर वालों के भिन्न २ उत्तर होंगे। ठीक उत्तर सचाई है और एक करना है,

भूल का काम अनेक करना है । एक धर्म्म के आज भूल से अनेक हो गए हैं । धर्म्म की दशा का विचार नहीं किया अतः धर्म्म के विषय की अधर्म्म की बुद्धि होगई, इसका कारण क्या है ? विचारपूर्वक हमारा कर्म्म न रहा । और इसका परिणाम आज भोग रहे हैं । उपनिषद् में आया है "त्रयो धर्म्मस्कन्धाः" धर्म्म के तीन स्कन्ध हैं (१) यज्ञ करना । यज्ञ के अर्थ की अग्निहोत्र–अश्वमेध तक व्याख्या है । जो कर्म मनुष्य को परमेश्वर तक मिलाता है उसको 'यज्ञ' कहते हैं । यज्ञ करने वाले और सर्वसाधारण में समान लाभ हो । जैसे कि आपने अपने गृह में कूप लगाया है पानी दूसरे को नहीं भरने देते आपके अधिकार में है इसका फल आपको है । एक कूप ऐसे स्थान पर लगाया जहां पर सारे लोगों को कूप न होने से कष्ट न होता था । उससे आपको विशेष लाभ नहीं है जितना कि सर्वसाधारण को है इतना ही आपको है । यदि उस कूप का स्वामी अभिमान करे तो लोग कहेंगे कि यदि यह सबके लिए न था तो घर में ही क्यों न लगवा लिया । आज इस काम को करने वाले बहुत कम हैं जब संसार में इन पुरुषों की संख्या बढ़ती है तो लोग सुख के मार्ग पर चलते हैं अन्यथा दूसरी दशा में दुःख के मार्ग पर चलते हैं । एक रागी किसी कमिश्नर

साहब के पास गया और स्टेशन के विषय में कविता की। साहब सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और पारितोषिक के लिए कहा कि परसों देंगे। जब वह परसों गया और इनाम के लिए याचना की तो साहबबहादुर ने कहा कि इनाम कैसे दें। एक प्रकार की स्वर से हमें प्रसन्न किया हमने भी परसों की प्रतिज्ञा देकर आपको प्रसन्न कर दिया, कोई सर्वसाधारण के लाभ की बात बतलाओ तो इनाम मिलेगा किसी ने कहा है:—

अकड़ ऐंठ अभिमान में गए बहुत दिन बीत।
आओ रलमिल बैठिये जो बढ़े परस्पर प्रीत॥

दूसरा अंग—अध्ययन अर्थात् विद्या का पढ़ना और पढ़ाना। इस क्रम में माताओ और बहनों को तो पृथक् कर दिया गया है, परन्तु मैंना और तोते को पिंजरे में बंद करके पढ़ाया। क्या कन्याओं को बिना पढ़ाए रख कर सुख पा सकोगे? क्या यह सारा नाटक इसलिए रचा गया है कि मालूम हो जाए कि कन्याएं क्यों अशिक्षित हैं। गुड़ियों की रीति इस लिए प्रचलित हुई कि माताओं ने एक प्रकार का नाटक करके दिखला दिया कि जिनका विवाह करते हो वह तो ऐसी निर्जीव हैं जैसे कि गुड़ियां। किसी कन्या के सामने एक शब्द कह दो जेल तक पहुंचा दें परन्तु विवाह के समय पर सिठनियां और अश्लील बातें कहती हैं। इसी प्रकार से संस्कार मलीन होते चले गए।

मातृमान् पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद ।

इस में बतलाया है कि माता को बालक को इस प्रकार शिक्षा देनी चाहिए । माता गोद में खिलाती हुई बच्चे के लिए इतनी विद्या उपार्जन करती है जितनी कि पिता वर्ष में भी नहीं कर सकता । स्वामी विरजानन्दजी के पास जिस प्रकार दयानन्द जी रहे वहां और भी कई गुरु भाई (विद्यार्थी) रहे, परन्तु विरजानन्द जी उन सबको दयानन्द जैसा न बना सके, और उनको भी न बना सकते यदि माता के गर्भ में दयानन्दजी सुडौल न बन जाते । जितना माता और पिता का प्रभाव अपनी सन्तान पर पड़ता है उतना आचार्य्य का कभी नहीं हो सकता । माता पिता के विचारों का परिणाम बच्चा होता है । कभी २ तीर मारने वाले चूक जाते हैं परन्तु बच्चे भूल से लक्ष्य पर मार देते हैं ।

यद्यपि ब्रह्मचर्य्य का समय न था, विचार माता और पिता के स्नेह और प्रेम के थे, खाना ठीक हुआ जन्म अच्छा हो गया । दो पुरुष परस्पर गाली निकालते है परन्तु बुरे शब्दों को सुनकर सबका आनन्द जाता रहता है । जब दो पुरुषों के गाली देने से सुनने वालों के अन्तःकरण मलीन होते हैं, भला माता के गर्भ में पिता के क्रोध और लड़ाई से क्यों न बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता होगा, और क्यों न उसकी बुद्धि भ्रष्ट

होगी । जब तक माताओं की शिक्षा न होगी सन्तान मूर्ख रहेगी और यह सारे काम अधूरे और अपूर्ण पड़े रहेंगे ।

अरस्तु का कथन है कि यदि किसी देश की दशा को मालूम करना चाहो तो धन, सड़कों, स्कूलों, उद्यानों मकानों, न्यायालयों आदि के हालात पूछने से मालूम नहीं होंगे, प्रत्युत उस देश की स्त्रियों की अवस्था पूछने से वास्तविक दशा प्रकट हो सकती है कि यहां के लोग विद्वान् सदाचारी हैं, अथवा भीरू कायर और गिरे हुए प्रतीत होते हैं । हमने अपनी भूल से स्त्रियों को विद्या से वञ्चित रक्खा और उसका फल भोग रहे हैं ।

तीसरा अंग—दान-मनुष्य के स्वभाव में है कि देता रहे । इस स्थान पर ५० रोटियां हैं, और २५ पुरुष हैं यदि बांटी जाएंगी तो दो रोटी प्रति पुरुष को मिलेंगी, १० पुरुष यदि ५-५ के हिसाब से ले लेवें, तो शेष भूखे रह जाएंगे । इसी प्रकार भोजन तथा वस्त्रों की दशा है और यही हमारे अन्याय का फल हो रहा है।

दान की प्रणाली में बड़ी गड़बड़ है । हम दान करते हैं, परन्तु हमारी हानि होती है । जो कहते हैं कि भारत में अथवा हमारे पास धन हैं यह ठीक नहीं । कहते हैं कि अमेरीका में जहां कहीं पुष्प फैंको वह लखपति पर पड़ेगा । एक कृषक ने अपने क्षेत्र में १ मन बीज डाला १५ मन कनक पैदा हुई । ५ मन लग़ान

के लिए, दो मन कपड़ा के लिए, ६ मन खाने के लिए और १ मन आगामी वर्ष के लिए गढ़े में सुरक्षित रख दी। समय आया जो उसने बीज के लिए रक्खी हुई थी उसको भी खा गया। उसे चाहिए था कि परिश्रम करता और खाता। परन्तु बीज को कभी न व्यय करता परन्तु व्यसनी है भड़ोली अथवा घड़े को उखाड़ता है और अन्य वस्तुओं के खरीदने के लिए उसे व्यय कर देता है। क्या उसका कर्म्म ज्ञानपूर्वक है? बीज न होने की दशा में वह क्या करेगा? उसको कष्ट सहन करना पड़ेगा। क्योंकि कृषक होकर बीज को नष्ट कर रहा है। भारतवासी बीज के धन को भी व्यर्थ गंवा रहे हैं। मित्रो! ईख के खेत को कृषक बाड़ लगाता है परन्तु एक कनाल अलग बिना बाड़ के छोड़ देता है। क्योंकि उस को विश्वास है कि बिना बाड़ वाला कमाद आगामी वर्ष के बीज के लिए रक्खा हुआ है कौन ऐसा निर्दय होगा जो कि उस क्षेत्र को उखाड़े अथवा हानि पहुंचा दे। इसीलिए गिर्द बाड़ लगाने की आवश्यकता भी नहीं समझता। सज्जन! भारतवर्ष के पास यद्यपि धन नहीं है परन्तु जो है उसका तो शुद्ध सेवन करो। ठीक जिस प्रकार बीज के व्यय कर देने की दशा में कृषक को दुःख और कष्ट उठाना पड़ता है इसी प्रकार से तुम भी दुःख उठाओगे। ईसाई लोग दुर्भिक्ष की दशा में आपके भाइयों को रोटी

ही तो दिखला कर ले जाते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है कि दान देश, काल और पात्र की परीक्षा करके दो। धन वालो! अगर दान करते हो तो पहले देश की परीक्षा करो, यदि जल का कष्ट होए तो तड़ाग, कूप, बावली लगा कर दूर करो, यदि रोग से देश पीड़ित है तो औषधालय खोल कर अपने कर्त्तव्य का पालन करो, और यदि देश में विद्या की न्यूनता है तो विद्यालय और पाठशालाएं खोलो। परन्तु सत्य कहा है कि "विनाश-काले विपरीतबुद्धि"। हमने दान का उल्टा ही अर्थ समझा है हमने यही मान लिया है कि गया, हरिद्वार आदि तीर्थों पर पंडों को दान दे दो। काल का आशय यह था कि शीत उष्ण तथा ऋतु अनुसार दान करो, दुर्भिक्ष आदि में निर्धन और अनाथों की सहायता करो। अब उसके स्थान में एकादशी, पूर्णमासी पर दान किया जाता है। एकादशी का आशय तो यह था कि प्रतिदिन खाने वाला एक दिन न खाए तो आरोग्यता हो जाती है। भारतवर्ष में यह हाल है कि अजीर्ण है वैद्य के पास जाते हैं चूर्ण लेते हैं पाचकशक्ति को ठीक करने के लिए निराहार नहीं रहते, हैज़ा और अजीर्ण खरीद लेते हैं। शिमला के लोग यदि ११ वें दिन मानो दो हज़ार आदमी नहीं खाते तो ४ हज़ार पुरुषों का भोजन दो बार निरा-हार करने से १ मास में बच जाता है, और इसकी आय

से कई निर्धन पल सकते हैं, अथवा कई विद्याहीन पढ़ सकते हैं, और इसी प्रकार से ब्रह्मचारी और विद्यार्थी पढ़ जाएंगे, और आप लोगों का स्वास्थ्य भी बन जाएगा। जिस समय देश की यह दशा थी उस समय मांगने का आवश्यकता न थी। आजकल ठग्गी अधिक है। निराहार के स्थान में आजकल एकादशी को फलाहार और १ सेर पेड़े खाए जाते हैं और दूसरे दिन मृदु भोजन खाया जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि एक तो उल्टा अधिक खा जाते हैं, दूसरे स्वास्थ्य बिगड़ जाता है इसलिए लाभ के स्थान में हानि हो रही है।

पात्र—पात्र के अर्थ अधिकारी के हैं। जिसके माता और पिता जीवित न रहें वह अनाथ हो जाते हैं उनका बोझ जनता पर है। जो विधवाएं हो जाएं उनकी रक्षा करें। विद्यार्थियों और ब्रह्मचारियों को विद्यादान करें।

भारतवासी इसी प्रकार के मनुष्य धर्म्म का पालन किया करते थे। परन्तु अब गया के पण्डे, मथुरा और हरिद्वार के चौबे १७८००० के लगभग हैं। इनका काम है भंग का पीना खाना और गंगा के तट पर जाकर शौच हो आना अथवा लठबाज़ी करना और लड़ना। इस रूप में दान लेने वाला और दानी दोनों ही पापी हैं। प्रश्न यह है कि देने वाला क्यों पापी है ? लोग बंदूकों से मृग मारते हैं यदि मैं किसी को

बंदूक दूं और गोली न दूं तो वह बंदूक नहीं चल सकती। मृग तब ही मरेगा जब बारूद भरा हो और गोली भी हो। बारूद का काम तो हमने धन से लिया गोली का काम बुरे काम से उन्होंने किया। भला, यदि सारे संन्यासी आदि विद्वान् होते तो भारतवर्ष की यह दुर्दशा होती? जिसमें ५२ लाख के लगभग साधु हों। यदि दान की प्रणाली ठीक हो जाए तो एक ही वर्ष में भारतवर्ष की अवस्था का परिवर्त्तन होकर सारे काम ठीक हो जाएं। अम्बाला में मेरे पांव में ठोकर लगी, अब तक पीड़ा है और नंगे पांव कई दिनों से चलना पड़ता है। यह अपने विपरीत कामों का ही तो परिणाम है। आंखें खोल कर संभल कर चलता तो आज यह दशा न होती। सज्जनो! यही अवस्था दान की है। धन कमा कर उल्टी ओर लगाया है आजकल भी तो वैसे ही भुक रहे हैं। अब तो पंडों के लिए ही २५) तोला का इतर गाजीपुर वाला काम आता है गृहस्थी थोड़ा मोल ले सकते हैं? यदि सोच विचार कर दान करते तो दान लेने वालों को भी होश होती कि किस प्रकार से पुरुष भूषण आदि बेच कर भी और ऋण उठा कर भी दान करते हैं। वह अपनी सन्तान को पढ़ाते और धर्म्म उपदेश करते। इनको धन की चिन्ता न रहती। पढ़ना धन कमाने के लिए है और जब दान मिल जाता

है तो फिर इसी लिए तो पढ़ते नहीं । परिणाम यह है कि अविद्या और विषयों में पड़ भूल पर भूल हो गई । नीतिकार कहते हैं कि मनुष्यो ! धन दान दो बुद्धिमानों और विद्वानों के लिए, इसपर एक दृष्टान्त देता हूं । ज्येष्ट और आषाढ़ मास में तालावों और समुद्रों से जल उड़ता है सूर्य्य की किरणों से तालाब हौज़, नदियों का जल न्यून रह ज़ाता है, ऊपर जाकर वायु के सम्बन्ध से जल बन कर नीचे गिरता है । पर्वतों में हिम तराइयों को ठंडा, वन उपवन को हरा भरा कर दिया, नदियों को बहाया गरमी बुझाई और फिर उन्हीं नदियों तालावों और समुद्रों को भी भर दिया । अर्थात् जहां से पानी उड़ा कर न्यून किया था उनको भी भरपूर्ण कर दिया इसी प्रकार से शास्त्र की आज्ञा है कि दान करो । एक समय का वर्णन है कि एक माली ने गुलाब के पुष्प उद्यान में लगाए हुए थे बुलबुल उनको नोचती थी माली ने जाल बिछाया जिसमें बुलबुल फंस गई जिसको माली ने पिंजरे में बंद करके लटका दिया । बुलबुल इस प्रकार कहने लगी—एक वन में चार पांच पुरुष जा रहे थे इतने में एक तीतर बोला, एक उनमें से जो पहलवान था वह तीतर के शब्द सुन कर बोला कि यह कहता है "दंड, कुश्ती और कसरत" । दूसरा मुसलमान था उसने कहा यह कहता है "सुबहान

तेरी कुदरत" । तीसरा जो वैश्य था उसने कहा यह कहता है "सोंठ अजवायन अदरक" । चौथा जो वैरागी था उसने कहा यह कहता है "सीताराम और जसरथ" । प्रत्येक ने अपने २ विचार के अनुसार तीतर के शब्द की व्याख्या की । इससे माली के मन में यह बात जच गई उसने समझा कि बुलबुल उसे कह रही है कि ऐ मनुष्य ! तुझको तो ईश्वर ने मनुष्य बनाया है मैं भूल कर सकती हूं अतः क्षमा मांगती हूं, क्षमा करना मनुष्य का धर्म्म है तू मेरी स्वतन्त्रता को क्यों रोकता है ? माली ने पिंजरे से उसको छोड़ दिया । बुलबुल वृक्ष पर जा बैठी और बोलने लगी—माली ! परमात्मा दयावान् है और करुणानिधान है इसी प्रकार तू। जिस वृक्ष की शाखा पर मैं बैठी हूं उसको खोद, वहां स्वर्णमुद्रिका का घड़ा दबा हुआ है । जब माली ने खोदा, उसमें से स्वर्णमुद्रिका निकलीं, वह उनको देख कर शोकातुर हो बैठ गया, जैसे रोटी खाते समय तृण की ओर जो कहीं दांतों में घुस गया है जिह्वा की दशा होती है कि वह वहीं बार २ जाती और काम करती है यही अवस्था संशयात्मक मनुष्य की हो जाती है । सन्देह और चिन्ता उसको इसलिए हुई कि सामने की वस्तु अर्थात् जाल को तो नहीं देखा परन्तु आश्चर्य है कि भूमि के अन्दर दबी हुई वस्तु को देख लिया है ।

बुलबुल ने कहा कि जब मृत्यु आती है तो सामने पड़ी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

भारतवर्ष में ऋषि आदि जिनकी आज प्रशंसा की जाती है सब ही विद्यमान थे। भारत सन्तान ने दुःख उठाना था विपरीत कार्य करने लगे। यदि धर्म्म का सुख चाहते हो तो यज्ञ की विद्या सबको सिखाओ, इसी प्रकार उसको समझो जैसा कि वास्तव में है। जब मैं हुश्यारपुर में होता था तो दूज के चांद को सब देखते और एक दूसरे को आशीर्वाद देते थे, वस्त्र का टुकड़ा फाड़ते थे। परन्तु पूर्णमासी के दिन कोई ऐसा नहीं करता, क्या कारण है? कारण यह था कि यह शिक्षा थी कि जो निर्बल शक्ति है, उस पर विचार करो। परन्तु आज अवस्था और है। वही नियम पल्टा खा गए ९१ में ९ बाई ओर इकाई दहनी ओर है उलटने से अर्थात् अभिमान से १९ बन जाते हैं। इसी प्रकार मित्रो! अभिमान रहित होकर निर्बलों अछूतों आदि की सहायता करो, नहीं तो पीछे पछताना होगा और दुःख भोगना पड़ेगा। आज अवस्था उल्टी है प्रत्येक अपनी चिन्ता में निमग्न है। चमार साधु कुछ पढ़ गए हैं उनमें से मुझे कई मिले, वह आर्य्यसमाज का उपदेश सुनने लग गए हैं उनमें से एक कहने लगा कि हम चमार नहीं, वास्तव में चारमार हैं। हमारे पूर्वजों ने चार शत्रुओं अर्थात् काम,

क्रोध, लोभ और मोह को जीत लिया था, परन्तु अहंकार को वश में नहीं किया था इसलिए हम चारमार अर्थात् चमार प्रसिद्ध होगए। यह है संसार की परिवृत्ति का झुकाव। आज सारे विचार में पड़ गए हैं और परिवर्तन हो रहा है अतः अब आप लोगों का कर्त्तव्य है कि स्वयमेव सावधान होकर यज्ञ और दान की महिमा को समझें, इनका ठीक और ज्ञानपूर्वक सेवन करें, धर्म्म स्वयं फल देगा, सब संसार में सुख होगा, और आपकी कीर्त्ति होगी, परमात्मा आप लोगों को बल दें।

आर्य्यसमाज को चेतावनी ।

ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥

सावधान होने की आवश्यकता—आप दो दिन से महात्माओं के उपदेश श्रवण कर रहे हैं । उत्तम से उत्तम उपदेश जिनसे आपका जीवन पल्टा खाए, आपको दिए जा रहे हैं, परन्तु व्यवस्था इसमें यह है कि जब असावधानी से कहीं पांव पड़ जाए तो पांव फिसल जाता है । यही अवस्था जातियों और मतों की है । इतिहास बतलाता है कि बड़े बड़े सम्प्रदाय के प्रवर्त्तकों ने जो शिक्षा दी, उनके पीछे उनके अनुयायियों के पग उस मार्ग से फिसल गए । महाभारत के पीछे सबसे पूर्व महात्मा बुद्ध ने उपदेश आरम्भ किया । उन्होंने देखा कि चारों ओर पाप फैला हुआ है बड़े वेग से जहां और कई प्रकार के उपदेश किए अहिंसा के प्रचार पर सब से अधिक बल दिया । परन्तु इतिहास बतलाता है कि जब इसके अनुयायियों का सम्बन्ध इसके उपदेशों के साथ न रहा तो उसका प्रयत्न शिथिल होगया जैसे इंजन के साथ गाड़ी का सम्बन्ध छूट जाने से गाड़ी चल नहीं सकती इसी प्रकार प्रवर्त्तक का सम्बन्ध न रहने से अर्थात् उसकी शिक्षा के शिथिल होने से उसके मतावलम्बियों में वह साहस नहीं रहता

जिसका वह प्रचार करता था। आप ईसा और मुहम्मद को ले लें। जब तक इन महात्माओं के अनुयायियों का सम्बन्ध उनकी शिक्षा के साथ रहा, उनमें आत्मत्व का प्रचार रहा, परन्तु जब सम्बन्ध छूटा, कबरपरस्ती, पीरपरस्ती आरम्भ होगई। संसार में घोर अन्धकार देखकर वर्तमानकाल में महानुभाव ऋषि दयानन्द ने फिर उपदेश आरम्भ किया। आप इतिहास को संमुख रखें और विचार कर देखें, कि जिन त्रुटियों को दयानन्द ने दूर करने का प्रयत्न किया था, क्या वह दूर होगई हैं? क्या वही अब हममें विद्यमान नहीं हैं? जिस समय आपने खेत को बोया था, घास से साफ़ कर दिया था परन्तु क़नक के साथ फिर घास उग आता है। इसी प्रकार काम के साथ त्रुटियां आती ही रहती हैं, परन्तु काम करने वालों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह इन त्रुटियों को दूर करें, अन्यथा भय है। इस देश के निवासी इतने भाग्यवान् नहीं है कि प्रति २० वर्ष के पीछे जब त्रुटियां आने लगें कोई महात्मा उत्पन्न होजाए जो उन त्रुटियों को दूर कर दे, जो देश ऐसा होता है वह शीघ्र उन्नति करता है॥

न्यूनताएं क्या हैं? कपिल कहते हैं वेदों का अर्थ उनको प्रतीत होगा जो सृष्टि के नियम को देखेंगे। अंग्रेज़ी के विद्वान् वेदों के ज्ञान से अभिज्ञ नहीं, परन्तु

संस्कृत के पंडित सृष्टिक्रम को भली प्रकार जानते हैं। इस समय आवश्यकता है उनकी जो दोनों को मिला दें। परन्तु हमारे दुर्भाग्य के कारण दोनों मिलते नहीं। जिस प्रकार दो दीपक मिलने से छाया उड़ जाती है इसी प्रकार दो विद्वानों के मिलने से भ्रम दूर हो जाता है। संभव है कि भविष्य में ऐसा हो जाए। परन्तु प्रश्न तो यह है कि क्या हम धीरे २ ऋषि के उद्देश्य से पीछे तो नहीं हट रहे ?। कई ऐसे विचार मनुष्य में होते हैं जो सदा उसको दुःख देते रहते हैं॥

मेरा यह विचार है कि हम ऋषि के उद्देश्य से परे हट रहे हैं। स्वामी जी ने जो कुछ लिखा है यदि वह सारा हमारी समझ में नहीं आता, तो यह हमारी भूल है। सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि परमात्मा को छोड़ देने से संसार में कष्ट हो रहा है यह हमारे संमुख सर्वदा प्रत्यक्ष बात है कि एक ओर जल की अधिकता खेतों का नाश कर रही है, परन्तु दूसरी ओर जल की कमी अनाज़ आदि को उत्पन्न होने नहीं देती। खेतों को परमात्मा ने नहीं सींचना, उसने नियम बतला दिया। इसी प्रकार ऋषि ने सिद्ध कर दिया कि अंग्रेज़ी विद्वानों का यह भ्रम है कि प्राचीन आर्य्य अनेक परमेश्वर की पूजा करते थे। बतलाया कि अनेक नाम परमात्मा के गुणों के वाची हैं। ऋषि ने दर्शाया कि

केवल पुस्तकों को पढ़ लेने को ही शिक्षा नहीं कहते। ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है और अपने जीवन से सिद्ध किया कि जिन दिनों में अष्टाध्यायी प्रचलित थी उन दिनों में ऋषि उत्पन्न होते थे। ऋषि आकाश से उत्पन्न नहीं होते प्रत्युत बनाए जाते हैं जब वह उत्पन्न होते थे संसार में सुख था। पाणिनि जी महाराज ने अष्टाध्यायी के सूत्रों का निर्माण किया, परन्तु जब पतञ्जलि जी महाराज हुए रही सही न्यूनता को दूर कर दिया। उन्होंने अपनी गद्दी जमाने के लिए पाणिनि के सूत्रों को नष्ट नहीं किया इसके पश्चात् वार्तिककार ने महाभाष्य में उनकी व्याख्या कर दी। परन्तु यह प्रथा तब तक रही जब तक आर्य्यग्रन्थों का प्रचार रहा, जब उनके प्रचार में शिथिलता आई। भट्टोजी दीक्षित ने पहले सारे काम पर पानी फेर दिया। मनुष्यों और ऋषियों में यह भेद है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में शिक्षा का विधान किया है, जिन बातों को हम नहीं कर सकते न करें, जैसे—कन्यागुरुकुल। परन्तु जिन बातों को कर सकते हैं शोक है कि उनको भी नहीं करते। जैसे—जिन पुस्तकों को पढ़ाने के लिए स्वामी जी ने रोका है, हम उनको भी नहीं छोड़ते। मुझे एक सनातनी पण्डित ने उलाहना दिया कि स्वामी दयानन्द ने तो

लघुकौमुदी बन्द की थी परन्तु फिर लघुकौमुदी के बिना गुरुकुल क्यों न चला लिया ? मैं इसका उत्तर क्या दे सकता था, जब कि हमारे गुरुकुलों में कौमुदी पढ़ाई जाती है, लज्जित होना पड़ा । स्कूलों तक में अष्टाध्यायी प्रचलित हो सकती है यदि हम मेल मिलाप करें । जो कुछ हम चाहते हैं सरकार वही करने को उद्यत है, यदि हम मिल कर करें परन्तु करे कौन ? देखा अभी चालीस वर्ष भी नहीं व्यतीत हुए हम ऋषि के उद्देश्य से कितने दूर चले गए हैं ।

दूसरी न्यूनता—दूसरी त्रुटि जो मैं आपको बतलाना चाहता हूं वह यह है कि जहां जाएं वहां यह पूछा जाता है कि क्यों जी गीता पर आर्य्यमुनि का भाष्य लें या राजाराम का ? अब क्या उत्तर दें ? दोनों ही आर्य्य पंडित हैं । बात तो सारी पैसों की है । यदि दोनों विचार कर बनाते और पैसे आधे २ बांट लेते तो कोई बुराई न होती ।

तीसरी न्यूनता—गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल कांगड़ी बड़े महत्त्व के विद्यालय हैं परन्तु अब जो उनकी शाखाएं खोलने पर बल दिया जा रहा है यह न खुलनी चाहिएं । अभी इन गुरुकुलों में बहुत अधूरापन है । सारा वर्ष इनके संचालकों का रुपया मांगने में व्यतीत होजाता है, फिर भी इनका व्यय नहीं चलता । ऐसी अवस्थाओं में शाखाओं का खुलना सारी गुरुकुल-प्रणाली

को धक्का लगाएगा। शाखाएं तब खोली जाएं कि वह स्वयमेव उनको चला सकें। प्रश्न होगा कि शिक्षा को कैसे फैलाया जाए? इसके लिए यह काम करना चाहिए कि जो विद्यार्थी मारे २ फिरते हैं उनकी शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं परन्तु वह निपुण हैं, आर्य्य समाज से उनकी सहानुभूति है, परन्तु पौराणिक पंडितों से विद्याध्ययन के कारण उनके विचार पल्टा खा जाते हैं ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा का काम आर्य्यसमाजों को अपने हाथ में लेना चाहिए। आर्य्यसमाजों की ओर से सदैव नोटिस निकलता है कि एक उपदेशक की आवश्यकता है, विवश हो पौराणिक विचार के शास्त्री फेल को ३०-४०) मासिक पर रख लेते हैं और वह भी इस भाव से कि चलो ३०-४०) आर्य्यसमाज से मुफ्त मिलता है नौकरी कर लेता है। आर्य्यसमाजें समझती हैं कि सस्ता उपदेशक मिल गया। अब उसको लड़के पढ़ाने के काम पर लगाया जाता है और फिर शिकायत की जाती है कि आर्य्यस्कूल में पढ़ाने से लड़के आर्य्यसमाजी नहीं बनते, भला सोचो जब अध्यापक ही आर्य्यसमाजी नहीं तो लड़के क्या आर्य्य समाजी बनेंगे? ऐसे विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर आर्य्यसमाजों को इन पर आठ वर्ष पर्यन्त पढ़ाई करनी चाहिए।

८ वर्ष के पीछे वह अच्छे आर्य्य-उपदेशक बनकर

सहस्रों की संख्या में फैल जाएंगे, यदि विद्या और प्रचार को फैलाना चाहते हो तो इस प्रणाली को ग्रहण करो।

एक और न्यूनता—चमार जातियों की छोटी २ जो पाठशालाएं खुलती हैं यह भी ऋषि की उदारता का फल है। परन्तु इनसे जिस लाभ की आशा थी, वह अभी नहीं हुआ। थोड़े विचार से सब काम ठीक हो सकता है, अन्तर यह है कि सारी पाठशालाओं में भिन्न भिन्न प्रणाली प्रचलित है यदि इस पर विचार करके उनकी पाठविधि एक कर दी जाए तो उससे जहां उन के विचार विस्तीर्ण होंगे, वहां एक पाठशाला का विद्यार्थी दूसरी पाठशाला में बिना रोकटोक प्रविष्ट हो सकेगा। तीन जिलों में ३० विद्यार्थी अवश्य होने चाहिएं। यह काम थोड़ा है इस पर धन भी कम व्यय होता है, परन्तु लाभ अधिक होगा। उसके साथ ही एक उपदेशक भी निरीक्षक इन पर नियत कर देना चाहिए जो उनकी परीक्षा ले और उनमें प्रचार करे। परन्तु उपदेशक ऐसा होना चाहिए जिसको उनके साथ विशेष स्नेह हो। इस समय काम का आरम्भ है यदि यत्न करेंगे तो सब काम ठीक हो जाएगा। यह बच्चे बुद्धिमान् अधिक होते हैं। सब ओर से द्वार खोल दो नहीं मालूम किस ओर से योगी उत्पन्न हो जाएंगे। लायलपुर के ज़िले की प्रायः सरकार को अन्य ज़िलों की अपेक्षा अधिक आय होती है कारण यह हैं कि वहां की भूमि वर्षों तक ऊषर रहने से उसकी

उपज शक्ति बढ़ चुकी है। यह छोटी जातियां भी ऊपर भूमि के समान हैं, इन पर केवल १० वर्ष आप व्यय करके देख लें कि अन्य जातियों की अपेक्षा इनसे कितना लाभ होता है। गुरुकुल कांगड़ी का व्यय एक लाख रुपया वार्षिक है इसके लगभग गुरुकुल वृन्दावन का। इतने भारी व्यय में से क्या दो हज़ार रुपया अछूत बालकों की शिक्षा के लिए नहीं निकाल सकते? धन-वानों के साथ सारा संसार प्रेम करता है, तुम निर्धनों के साथ प्रेम करो ताकि तुम्हारा भला हो। गुरुकुल वृन्दावन और गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिक उत्सव पर बड़े २ दानी अपनी उदारता का प्रमाण देते हैं कोई भूमि देता है कोई ब्रह्मचारियों के दूध का ठेका लेता है परन्तु है कोई शूरवीर, जिसके मन में इन बालकों के लिए दया का भाव उत्पन्न हो और जो यह कहे कि मैं अछूत बालकों के लिए इतनी भूमि अथवा रुपया देता हूं परन्तु करे कौन? जब कि उपदेशकों के मन ही शुद्ध नहीं। ईसाई धर्म्म का प्रचार बड़े २ पादरी करते हैं जिनका जीवन आदर्श जीवन पेश किया जा सकता है। वह स्वयं रेलवे स्टेशनों पर जाकर पुस्तकें वितीर्ण करते हैं परन्तु किसी आर्य्य-उपदेशक को कहो और देखो वह क्या उत्तर देता है? हम लोग इस में अपनी मान हानि समझते हैं। हमने तो अपनी आजीविका और फ़ैशन के लिए उपदेश का काम आरम्भ कर रक्खा है, परन्तु यदि रक्खो

सुधार नहीं होगा, जब तक उपदेशकों के भाव दुष्ट रहेंगे, उपदेशकों के जीवन के साथ जनता का जीवन है। यदि हम लोगों में ढीलापन है तो सुधार नहीं हो सकता। जिस प्रकार माता का प्यार अधिकतर छोटे बच्चे के साथ होता है उसी प्रकार पवित्र जीवन की आवाज़ कंगालों के लिए अधिक उठती है। जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, उन्होंने छोटी जातियों को उठाने का यत्न किया है, परन्तु यहां पर्दा उल्टा है। परमात्मा तुम्हारा भला नहीं कर सकते, यदि भला चाहते हो, तो अछूत जातियों को गले लगाओ यह जाति का तुम्हारा अंग बन जाएंगे। और तुम्हारी जाति की सारी निर्बलता दूर होजाएगी। ऋषि दयानन्द बंबई में आर्य्यसमाज के नियम बनाने लगे, तो हाथ में लेखनी लेकर कुछ विचार कर रहे थे कि एक भद्र पुरुष आए और पूछा कि महाराज! क्या सोच रहे हैं। स्वामीजी नें उत्तर दिया कि आर्य्यसमाज के नियम। वह महाशय बोले कि इस में सोच कैसी? लिख दो कि "अपने देश तथा जाति का भला करना आर्य्यसमाज का नियम है"। स्वामीजी नें क्रोधित हो कहा, जाओ तुम इन बातों को नहीं सोच सकते। और बड़े गूढ़ विचार के पश्चात् लिख दिया कि "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश है"। भद्र पुरुषो! सोचो, क्या ये अछूत जातियां संसार में नहीं हैं? यदि हैं तो फिर उनके उठाने में क्यों देर कर रहे हो॥

आनन्द संग्रह ।

दूसरा भाग

स्वामीजी के नए उपदेश ।

आनन्द संग्रह ।

दूसरा भाग

स्वामीजी के नए उपदेश ।

विवेक और वैराग्य ।

सज्जनो ! संसार की अवस्था देखने में कुछ और है, परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है । नैय्यायिकों का सिद्धान्त है कि संसार एक चक्र की तरह घूमता है । जिस प्रकार चक्र के सिरे का कुछ पता नहीं लगता, दो मिन्ट में जो सिरा ऊपर होता है वह नीचे होजाता है । इसी बात को फ़ारसी में "हर क़माले राज़वाले" कहा गया है । परन्तु साधारणलोग इसको नहीं समझते । कभी भारत का बहुत उदय था, जिसका उदय हुआ उसका अस्त होता है । अब कोई पूछे कि अस्त क्यों हुआ तो इसका उत्तर क्या दिया जा सकता है । किसी का पिता मर गया था, लोग शोक प्रकट करने आए और कारण पूछने लगे कि क्यों मरा, कैसे मरा । पुरुष विचारशील था, उत्तर दिया, जो उत्पन्न

हुआ उसने एक दिन मरना था, सो मर गया, लोग अप्रसन्न होजाते हैं । यदि वही कह दे कि दो दिन ज्वर आया था मर गया तो उनको संतोष आजाता है और फिर आगे प्रश्न नहीं होता । संसार तो कारण पूछता है । इसी बात को महात्मा भर्तृहरि जी कहते हैं कि जिनका विवेक भ्रष्ट होजाता है वे स्वयं भ्रष्ट होजाते हैं । जो मनुष्य व जाति विवेकयुक्त होती है वह संसार के सुखों से लेकर परमेश्वर तक को प्राप्त करेगी, परन्तु जिसका विवेक भ्रष्ट होजाएगा उसको परमात्मा की प्राप्ति तो क्या संसार के सुख भी नहीं मिलते ।

विवेक क्या है ?

आप पूछेंगे, विवेक क्या है ? आपने सिपाहियों को चांदमारी करते कई बार देखा होगा । चांदमारी में कई सिपाही निशाने लगाने के लिए लक्ष्य बांधते हैं, परन्तु निशाना उसी का लगता है जिसका लक्ष्य ठीक नेत्रों के सामने हो, परन्तु जिसका लक्ष्य भ्रष्ट होजाए वह चाहे कितना ही यत्न क्यों न करे उसका निशाना नहीं लगता। लक्ष्य का भ्रष्ट होना व न होना परिणाम से जान पड़ता है, इसी का नाम 'विवेक' है । एक कवि ने विवेक का यह लक्षण किया है कि धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पदार्थ जिसके लक्ष्य में रहते हैं वह विवेकी पुरुष है । परन्तु जिस पुरुष के जीवन में न धर्म्म हो, न अर्थ न

काम और न मोक्ष की भावना है, उस पुरुष का जीवन उस बकरी [अजा] की न्याई है जिसके गले में दो स्तन हैं परन्तु दूध नहीं । ऐसे पुरुष विवेक भ्रष्ट होते हैं ।

विवेक का महत्त्व ।

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" यह वेदान्त का एक सूत्र है, अर्थात् इसके अनन्तर ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिए । किसके अनन्तर ? इन चार सिद्धान्तों के अनन्तर, जिनका मैंने पहले वर्णन किया है । इन चार सिद्धान्तों में पहला साधन विवेक है अपने हित और अहित का विचार ही 'विवेक' है ।

अब मैं आपसे पूछता हूं कि हममें विवेक कहां है ? विवेक के पश्चात् वैराग्य होता है । जिसमें विवेक नहीं उसमें वैराग्य भी नहीं होसकता । अंग्रेज़ी पढ़े लिखों में विवेक तो थोड़ा बहुत पाया जाता है परन्तु वैराग्य उन में नाममात्र का भी नहीं । वे कहते हैं कि वैराग्य ने देश का सत्यानाश कर दिया है, यह बात किसी अंश में तो ठीक है, परन्तु सर्व अंशों में सत्य नहीं । आप लोग जिन साधुओं को वैरागी समझ रहे हैं, वे वैरागी नहीं हैं, वे मूढ़ तो देश के लिए भार हैं ।

वैराग्य क्या है ?

एक विद्यार्थी जब विद्या समाप्त कर लेता है तब उसको विवेक होता है, और शास्त्रों में लिखा भी है कि

ब्रह्मचर्य्य के अनन्तर गृहस्थ, फिर वानप्रस्थ और तत्पश्चात् संन्यास है, यह एक लाइन है। परन्तु दूसरी लाइन हमारे शास्त्रों ने यह बतलाई है कि जिस समय वैराग्य हो उसी समय संन्यास ले लेना चाहिए, परन्तु यह भी ब्रह्मचर्य्य और विद्या समाप्ति के पश्चात्, क्योंकि विद्या समाप्ति के पश्चात् मनुष्य को विवेक होजाता है और वह अपने शुभाशुभ को जानने लगता है। विवेक के पश्चात् यदि अपना हित गृहस्थ में समझे गृहस्थी बन जाए, और वैराग्य उत्पन्न होजाए जो संन्यास धारण कर ले, जैसे—स्वामी शङ्कराचार्य्य ने किया।

स्वामी शङ्कराचार्य्य का संन्यास—विद्या समाप्त करने के पश्चात् स्वामी शंकराचार्य्य को देशोद्धार की चिन्ता हुई, और गृहस्थ से वैराग्य होगया। वह अपनी माता के पास आए और कहा, माता मुझे आज्ञा दे, मैं संसार का उद्धार करूं। माता प्रेम के वश में हुई आज्ञा नहीं देती, पुत्र वेद का विद्वान् है, माता की आज्ञा को भङ्ग करना भी नहीं चाहता। एक ओर माता की आज्ञा, दूसरी ओर संसार को उल्टे मार्ग से बचाने की कामना, चित्त व्याकुल होगया, दिन रात इसी चिन्ता में लीन रहता है। एक दिन अपने साथियों के साथ तालाब पर नहाने गए.......साथी तालाब में खेल कूद रहे हैं परन्तु उनको वही चिन्ता घेरे हुए है। सोचते सोचते

उन्हें ढंग सूझ गया और उन्होंने अपने साथियों से कह दिया कि मेरा पांव संसार ने पकड़ लिया है। उनका यह कहना था कि सब साथी तालाब से निकल कर भाग गए और उन्होंने शंकराचार्य्य की माता को जाकर कहा। वह रोती हुई तालाब पर आई, शंकराचार्य्य ने कहा, माता! घबरा मत, मुझे संसार कहता है, यदि तेरी माता तुझे घर से निकालने की आज्ञा दे देवे तो छोड़ देता हूं अन्यथा नहीं। माता ने सोचा यदि आज्ञा नहीं देती तो संसार पुत्र को निगल जाएगा, यदि आज्ञा दे दूं तो कभी न कभी देख ही लिया करूंगी। उसने कहा, पुत्र! मैं तुम्हें आज्ञा देती हूं। वह तालाब से बाहर निकल आए और उसी दिन से संसार के उद्धार में लग गए।

मैंने आपको बतलाया कि वैराग्य व संन्यास ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् और वानप्रस्थ दोनों अवस्थाओं में हो सकता है। यदि ब्रह्मचारी समझे कि मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पा सकता तो उसका उपाय गृहस्थ है, और यदि वह सम्पूर्ण सांसारिक कामनाओं को मार कर संसार का उपकार कर सकता है तो संन्यास ले लेवे।

वैराग्य ने सत्यानाश नहीं किया।

अब मैं यह बतलाना चाहता हूं कि क्या सचमुच वैराग्य नाश करने वाली वस्तु है। गृहस्थ में प्रवेश करके मनुष्य के लिए उपदेश है कि वह अपनी पत्नी से तो

राग करे परन्तु शेष सब स्त्रियों को माता और भगिनी जान कर उनसे वैराग्य करे। क्या यह वैराग्य देश का सत्यानाश करने वाली वस्तु है। दुःख तो यह है कि जहां हम अपनी स्त्री में राग करते हैं वहां हम दूसरी स्त्रियों से भी राग करने लग जाते हैं। वैराग्य संसार की व्यवस्था को ठीक रखने का साधन है, जैसा कि ऋषि दयानन्द ने वैराग्यवान् होकर किया।

एक ब्रह्मचारी गुरुकुल से पढ़ कर आ रहा था, उसकी ज़ेब में पंद्रह स्वर्णमुद्रिका थीं। ठग ने रास्ता रोक कर पूछा-बतला, तेरे पास क्या है? ब्रह्मचारी ने पंद्रह मुद्रिका निकाल कर दिखला दीं। ठग ने पूछा, तुमने मुझे सचसच क्यों बतलाया है। ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया, मुझे गुरुकुल में यही शिक्षा मिली है। इस बात का ठग के हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा और बोला, सज्जन! मुझे भी कुछ उपदेश कर, ब्रह्मचारी ने कहा, ठगी छोड़ दो और उसने उस निन्दित कर्म को छोड़ दिया। यही दशा वाल्मीकि ऋषि की हुई थी।

परन्तु हम आप प्रतिदिन उपदेश सुनते हैं, कुछ फल नहीं होता, क्योंकि हममें न विवेक है न वैराग्य। महाराज भर्तृहरि जी एक प्रश्न करते हैं और आप ही उसका उत्तर देते हैं कि क्या कारण है कि एक मनुष्य उपदेश सुनकर सुधर जाता है और दूसरा बिगड़ जाता है। वे

बतलाते हैं कि जिसके अन्तःकरण में सतोगुण की वृत्ति है उसको ज्ञान की एक विन्दु तार देता है और जिसके अन्तःकरण में तमोगुण का राज्य है उस पर उपदेश का एक उसके अन्धकार को बढ़ा देता है।

आरफ़ और ईश्वर भजन के प्यारे एकान्त को बहुत पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार भी प्रत्येक समय में एकान्त की खोज में रहते हैं। और आरफ़ अर्थात् भक्त तो ईश्वर भक्ति के लिए एकान्त पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार चोरी और यारी के लिए। अब इसमें एकान्त का क्या दोष ?

इसी लिए कहा है कि पहले अन्तःकरण को शुद्ध करो फिर प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविक अवस्था में दिखलाई देगी। सन्ध्या, स्वाध्याय, सत्संङ्ग सब काम विवेक के हैं। महात्मा बुद्ध, शंकर स्वामी, दयानन्द जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब विवेकी थे। जितना २ किसी में अधिक विवेक होगा उतना उतना ही वह अधिक महान होगा।

बुद्ध के जीवन की एक घटना।

महात्मा बुद्ध जब घर से निकलने वाले थे तो उनके पिता ने समझाया, कि पुत्र ! मैं वृद्ध होगया हूं, मेरी सेवा तेरा धर्म है। बुद्ध ने उत्तर दिया, मैं केवल एक वृद्ध की सेवा नहीं चाहता, परंच संसार भर के बूढ़ों

की सेवा का व्रत धारण करना चाहता हूं। फिर उन्हें कहा गया कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिए अब घर छोड़ना उचित नहीं। उत्तर दिया इस बालक ने मुझे उपदेश दिया है, कि घर से शीघ्र निकल क्योंकि यह कन्या और पुत्र बन्धन की कड़ियां हैं, जितनी अधिक होंगी उतना ही कस कर जकड़ लेंगी। मैंने आपको बतलाया कि अन्तःकरण की निर्बलता से जीवात्मा निर्बल हो जाता है, और मलिनता से मलिन होजाता है। काम क्रोध लोभ मोह अहंकार आत्मा को मलिन करने वाली वृत्तियां हैं। इसके लिए एक उदाहरण देता हूं, आपने एक बाग़ीचे में आम निम्बू और मिर्च के पौदे लगाए हैं, आकाश से उन पर जल बरसता है, एक के लिए वही जल मीठा रस बनाता है, दूसरे के लिए अम्ल और तीसरे के लिए कड़वा रस बनाता है। अब जल का क्या दोष ? जिस गुण वाले पौदे पर पड़ा उस पर वैसा प्रभाव डाला।

एक बनिये का उदाहरण।

एक स्थान पर एक पण्डित महाभारत की कथा कर रहे थे। कथा की समाप्ति पर किसी ने उससे कुछ शिक्षा ग्रहण की और किसी ने कुछ। एक बनिया भी उनमें कथा सुन रहा है, पण्डित जी ने उससे पूछा कि क्यों भाई ! तुमने क्या शिक्षा ग्रहण की। उसने

उत्तर दिया कि अपने भाइयों का माल जी खोल कर उड़ाएं और मर जाएं परन्तु लड़े बिना उनका धन वापस न करें । यह है अन्तःकरण की मलिनता ।

अन्तःकरण की शुद्धि अत्यावश्यक है ।

यदि प्रत्येक मनुष्य अपने अन्तःकरण की शुद्धि में लग जाए, तो सारा संसार थोड़े दिनों में सुधर जाए। परन्तु हम लोग करते क्या हैं ? बूट कपड़े और बाईसिकल की सफ़ाईके लिए तो दो दो घण्टे नित्य प्रति लगा देते हैं, किन्तु अपने अन्तःकरण की शुद्धिके लिए पंद्रह मिनट भी प्रतिदिन नहीं देते । बताओ, इस भरी समाज में कितने मनुष्य हैं ? जो सच्चे हृदयसे दस मिनट रोज भी अपने मनको शुद्ध करने में देते हैं, यदि तुम लोग यत्न ही नहीं करते, तो फिर यह कहना कि हमारे मन शुद्ध नहीं होते, भक्ति और सन्ध्या में जी नहीं लगता, कहां तक ठीक है । बात तो तब है कि यदि आप मनसे नित्य प्रति समय दें और फिर अन्तःकरण शुद्ध न हो ।

बिजली प्रकाश देगी ।

घोर अंधेरी रात्रिमें आप चल रहे थे, मार्ग दिखाई न देता था, पग पग पर ठोकरें खाते थे, उस समय परमात्मा की कृपा हुई, और बिजली जोरसे चमकी और मार्ग दिखला कर चली गई । अब यदि आप यह चाहें कि बिजली आपके पास ठहरी रहे तो यह हो नहीं

सकता। यही दशा धार्म्मिक जगत् की ऋषि दयानन्द के आनेसे पहले थी। सारा संसार अंधकार में था, परमात्मा की कृपा हुई, ऋषि दयानन्द जगत् में आए और मार्ग दिखला कर चले गए। अब आप लोग चाहते हैं कि वह हमारे पास बैठे रहते अथवा हमें फिर आकर जगाएं, यह नहीं हो सकता। यदि आपने उस समय प्रकाश नहीं लिया तो अब आपसे क्या आशा हो सकती है। इस लिए समय है कि अब भी संभल जाओ और समझ कर संसार का मुकाबिला करो। मैं शरीर की शुद्धि का विरोधी नहीं, परन्तु शरीर के साथ यदि अन्तःकरण की शुद्धि नहीं तो शरीर की शुद्धि किसी काम की नहीं, अन्तःकरण की शुद्धि सच्चा विवेक है जिससे मनुष्य अपनी हानि और लाभ को समझ सकता है।

कैसे शोक का स्थान है कि यदि हमारा एक पैसा खो जाए तो हम शोक के सागर में डूब जाते हैं, परन्तु जाति के लाल ईसाई और मुसलमान हो रहे हैं, परन्तु हमें कुछ चिन्ता नहीं। किसी कवि ने क्या अच्छा कहा हैः—

खोजाए गर एक पैसा लाख हम ग़म करें।
खोजाएं लाल जाति के न चश्म हम नम करें॥

यहां किस २ बात के रोने रोएं, सब लाइनें बिगड़ रही हैं। बलवान् मांगे तो उसे देते हैं परन्तु किसी धर्म कार्य्य के लिए मांगा जाए तो सौ बहाने करते हैं। ऐसे

लोगों के लिए भर्तृहरि जी ने लिखा है, कि जिनका धन धर्म कार्य्योंके लिए नहीं वह न उनके लिए लाभदायक और न दूसरों के लिए और शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है ।

यह तो रही दान की दशा, अब और सुनिए, बलवान् मारे भी और रोने भी न दे । एक ओर तो बचपन की शादी की प्रथा और दूसरी ओर जब कन्या विधवा हो जाए तो उसके लिए फिर शादी की आज्ञा नहीं, यह विवेक भ्रष्ट नहीं तो और क्या है । बंगाल, बिहार में एक एक ब्राह्मण की तीस तीस स्त्रियां हैं, वहां के लोग ब्राह्मण को कन्या देना अपना गौरव समझते हैं, और वे कन्या भी फिर ब्राह्मण के घर नहीं रहती, परंच अपने गृह में रह कर ब्राह्मण की स्त्री कहलाती है ।

एक कवि ने लिखा है, कि जिस मनुष्यों की श्रेणी ने वेद के उपदेशों से प्रमाद का कीच नहीं धोया, वह कल्याण की इच्छा कैसे कर सकती है । जो अच्छे उपदेशों की उपेक्षा करता है, उसकी वही दशा होती है, जो उसकी जिसके गृहमें सब कुछ होता है, परन्तु वह भूखा मरता है । आपके लिए यह समय प्रमाद का नहीं, परमात्मा ने आपको यौवन दिया है, यदि इस समय धर्म का संचय नहीं करोगे तो पछताओगे और फिर उस समय कुछ न बनेगा । इसलिए समय है कि आप अपने अन्तःकरणको शुद्ध और दृढ करो और अपने कर्त्तव्य के सामने हाथ

जोड़ कर खड़े रहा करो। यदि ऐसा करोगे तो देखोगे कि थोड़े ही समय में तुममें कितना बल आ जाएगा। स्वर्गवासी स्वामी दर्शनानन्द एक उदाहरण दिया करते थे और वह बहुत अच्छा उदाहरण था। वे रेलगाड़ी और इञ्जन का उदाहरण देकर बतलाया करते थे कि ऋषि दयानन्द आपके लिए इञ्जन था, जो व्यक्तियां गाड़ियों के समान इस इञ्जनके साथ लग जाएंगी वे अपने आदर्श स्थान पर पहुंच जाएंगी। यदि आप अपने आदर्श पर पहुंचना चाहते हैं तो ऋषि के चरण चिह्नों पर चल कर उसका अनुकरण करें, आपका कल्याण होगा, और संसारमें आपकी कीर्त्ति बढ़ेगी।

ब्रह्मचर्य्य ।

सज्जन पुरुषो ! वेदमें एक मंत्र आया है, जिसमे बतलाया गया है कि विद्वान् रोगी और नास्तिक कौन है। पहला प्रश्न इसमें यह किया गया है कि विद्वान् कौन है, उत्तर दिया गया है अर्थवत्, जिसमें अर्थ विद्यमान है, जो अर्थहीन एक बात भी नहीं कहता। दूसरा प्रश्न यह है कि रोगी कौन है ? उत्तर है, अधातु अर्थात् जिसमें धातु (वीर्य्य) नहीं। धातु का अर्थ विश्वास भी है, जिसका संसार में विश्वास न रहे वह भी रोगी है। विद्वान् के चिह्न एक और श्लोक में भी वर्णन किए हैं, इसमें बतलाया गया है कि जिसका [१] आचार विचार [२] उक्ति और कृति [३] मन्तव्य और कर्त्तव्य एक हों वह विद्वान् है। इस कसौटी के अनुसार आप देख लें कि आप में कितने विद्वान् हैं। हम लोग कहते कुछ और हैं परन्तु कर्त्तव्य से कुछ और दिखलाते हैं। मन के विचार कुछ और हैं परन्तु प्रकट कुछ और ही करते हैं। प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों होगया, उत्तर स्पष्ट है कि लोग गिर गए हैं। एक मनुष्य नौकरी के लिए तहसीलदार के पास गया, उसने कहा, कल आना तुम्हें नौकरी दी जाएगी। वहां से वापस आ रहा था, किसी ने पूछा कहां से आ रहे हो, उत्तर दिया यूंही घूमने गया था।

देखिए, थोड़ीसी बात में उसने झूठ बोल दिया, यह क्यों, केवल इसलिए कि उसे भय है कि यदि मैंने सत्य कह दिया तो वह मुझसे पहले ही तहसीलदार के पास पहुंच कर नौकरी न प्राप्त कर ले, और सचमुच ऐसा होता है। यह तो हुई उक्ति और कृति । अब आचार को देख लो, इसमें बड़ा भारी भेद है। अंग्रेज़ी लिखे पढ़ों का सिद्धान्त ही यह है, कि पब्लिक लाइफ़ (Public life) और तथा प्राइवेट लाइफ़ (Private life) और । उनकी आभ्यन्तरिक अवस्था तो कुछ और है, परन्तु बाहर दिखाने के लिए कुछ का कुछ बनकर दिखाते हैं। यह केवल अंग्रेज़ी शिक्षा का ही फल नहीं, परंच भारत के पतनकाल में तांत्रिक लोगों ने ऐसा मत निकाला था, कि गृह में तांत्रिक, सभा में जाकर वैष्णव, मन्दिर में जाकर शिव के उपासक अपने ताईं प्रकट करना । यही अवस्था आजकल के लोगों की है दुःख के साधनों को दूर और सुख के साधनों को प्राप्त करने का नाम अर्थ है और जो इस अर्थ को धारण करता है वह सच्चा विद्वान् है ॥

जन्तुओं का उदाहरण ।

जन्तुओं में भी यह गुण पाया जाता है कि वे दुःख के साधनों को दूर और सुख के साधनों को प्राप्त करते हैं । मैं आपको एक साधु की देखी हुई बात सुनाता हूं:—

संसार नदी के तीर पर लेटा रहता है, और कभी कभी मनुष्यों पर भी आक्रमण करता है, परन्तु कई बार ऐसा हुआ कि स्वामी जी समाधि में मग्न हैं और संसार उनके पास लेटा पड़ा है। शास्त्रों में कहा है "अहिंसादि वैरत्याग" अर्थात् जब मनुष्य अहिंसक होजाते हैं, उस समय प्राणी उससे वैर त्याग देते हैं, और इस बात को तो सब जानते हैं कि छोटे बच्चे को सांप नहीं काटता परंच उसके साथ खेलता है । संसार जिसका अभी मैंने ज़िकर किया है एक ऐसी नदी के तट पर रहता था जहां बहुत से बन्दर भी थे । जब कोई बन्दर पानी पीने आता, वह उसे ग्रास कर लेता । इसी प्रकार वह अनेक बन्दर निगल गया । बन्दरों की कमेटी हुई और उन्होंने इससे बचने की युक्ति निकाली । वे एक बड़ीसी शाखा को उठा लाए और उसके अगले भाग की नोक पर लिश्कफाही डालकर उसे नदी में डाल दिया और एक बन्दर उसी लिश्कफाही की दूसरी ओर बैठ गया । जब संसार उस पर लपका, बन्दर पीछे हट गया और उसका सिर उस लिश्कफाही में फंस गया, सारे बंदर उस शाखा पर से उठ गए जिससे वह संसार फंसा हुआ नदी से बाहर निकल आया । बाहर आना था कि समस्त बन्दरों ने मिल कर उसे मार दिया । यह है जन्तुओं का काम ॥

बलिदान का भाव भी जन्तुओं व वनस्पतियों में पाया जाता है । दस तोले जल में ६ तोले नमक डाल दो वह गल जाएगा, परन्तु उसके पश्चात् जो नमक डालोगे वह नहीं गलेगा । पहले नमक ने स्वयं गल कर अपने सजातियों के लिए रास्ता साफ़ कर दिया है । जिस देश के मनुष्य अपनी जाति धर्म और अपने देश के लिए अपने आपको खो देते हैं, वही देश उन्नत होते हैं । अफ्लातून ने एक स्थान पर कहा है कि दूसरों की भलाई में ही अपनी भलाई है, ऐसे ही पुरुषों को अर्थवत् व विद्वान् कहा गया है, केवल पुस्तकों को रटने वालों को विद्वान् नहीं कहते ॥

रोगी कौन है ?

जिसकी धातु पुष्ट न हो उसको 'रोगी' कहते हैं । सम्पूर्ण समाचारपत्रों को उलट कर देख लो, धातुपुष्ट करने वाली औषधियों से भरे पड़े हैं और इन्हीं विज्ञापनों के सिर पर समाचारपत्र चल रहे हैं । चांदी लोहा आदि धातुओं को भी धातु कहते हैं, क्रिया को भी धातु कहते हैं और वीर्य्य को भी धातु कहते हैं । जैसे क्रिया के बिना पद नहीं बन सकता, इसी प्रकार वीर्य्य के बिना जीवन नष्ट हो जाता है । भारतवर्ष में एक भारी भूल पड़ रही है, यहां अग्नि के बुझाने के लिए उस पर तेल डाला जाता है । धातु की न्यूनता से तो सारी व्याधियां

हैं, परन्तु फिर उनका यत्न ऐसी औषधियों से किया जाता है, जो धातु को जोश देकर जला देती हैं। औषधियों से सन्तान उत्पन्न की जाती है और फिर आशा की जाती है कि वह स्वस्थ रहे।

जिसकी धातु में दोष आगया हो उसका एक ही यत्न है और वह यह कि वह एक वर्ष तक मन वाणी और कर्म से ब्रह्मचारी रहे, सब दोष दूर हो जाएंगे। परन्तु एक कवि ने कहा है:—

पन्दे हक कड़वी लगे इन्सान को अफसोस आह।

इन बातों को सुनता कौन है, जिस प्रकार कुपथ्य करने वाला रोगी वैद्य को कसाई की तरह देखता है उसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य आपको बुरा लगता है। समग्र रोग आपने स्वयं उत्पन्न किए हैं, परमात्मा ने उनको उत्पन्न नहीं किया।

उत्पत्तिक्रम इस प्रकार है, सब से पहले आकाश और उसमें प्रकृतिके परमाणु फैले हुए थे, परमात्मा ने उनको इकट्ठा कर दिया। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियां और वनस्पति, औषधियों से पुरुष उत्पन्न हुआ और पुरुष से भूख उत्पन्न हुई और भूख निवृत्त करने के लिए इसका उपाय परमात्मा ने औषधि अन्न और वनस्पति उत्पन्न की।

इस समय के जितने भी रोग हैं वह मनुष्यों ने स्वयं सहेड़े हैं और अनुभव से ऐसा प्रतीत होता है कि सौ में निन्यानवें मनुष्य धातु के रोग में ग्रस्त हैं और यह अनुभव भी मैंने वल्लभगढ़ में किया ॥

इसलिए यदि आप इन रोगों से बचना चाहते हैं तो ब्रह्मचारी बनो ॥

अफ्लातून का पुत्र जब बहुत बड़ा हो गया तो अफ्लातून की स्त्री को एक और पुत्र की इच्छा हुई, उसने पुत्र को सिखलाया और पुत्र ने अपने पिता से कहा कि यदि मेरा एक भाई और हो जाए तो क्या ही अच्छा हो, हम दोनों खेलें ॥

अफ्लातून ने उत्तर दिया कि जाओ मैं पहले ही पछता रहा हूँ, यदि मैं तुझे उत्पन्न न करता तो मैं संसार में अकेला होता और मेरा सारा मस्तिष्क फिलासफ़ी में लग जाता। प्राचीन विद्वान् लोग वीर्य्य की इतनी कदर करते थे परन्तु हम वीर्य्य को ऐसा समझते हैं जैसा नाक से मल साफ़ कर दिया ॥

स्वामीजी के जीवन की एक कथा ।

पिछले देहली दर्बार में जब मैं गया, एक ग्वालियार के मारवाड़ी ने मुझे स्वामीजी के जीवन की एक कथा सुनाई। उसने बतलाया कि स्वामीजी के उपदेशों की चर्चा सुन कर एक प्रतिष्ठित मुसलमान भी उनके

पास गया, परन्तु उसका मुख सर्वदा उदास रहता था। स्वामीजी ने कारण पूछा, उसने उत्तर दिया कि मेरे कई बच्चे हुए हैं परन्तु जीता कोई नहीं है इस लिए मन सर्वदा उदास रहता है। स्वामीजी ने कहा कि उपाय तो हम बतला देते हैं परन्तु है कुछ कठिन, यदि तुम करो तो हम विश्वास दिलाते हैं कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न होगा और जीता रहेगा। उसने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए और कहा कि महाराज जो कुछ आप कहेंगे करूंगा। स्वामी जी ने कहा कि सब से बड़ी शर्त एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रखने की है, यदि यह स्वीकार हो तो अपनी स्त्री से पूछ कर आओ कि वह भी स्वीकार करती है व नहीं। वह घर गया और दूसरे दिन आकर कहा कि महाराज हम दोनों स्वीकार करते हैं। स्वामीजी ने उनको गर्म वस्तुएं मांस मदिरा आदि छोड़ने के लिए कहा। एक वर्ष उन्होंने ब्रह्मचर्य्य करके पुत्र उत्पन्न किया और वह इस समय उनके घर में जीवित है। ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य के सब दोष दूर होजाते हैं।

ब्रह्मचर्य्य जैसा पुरुष के लिए है वैसा स्त्री के लिए भी आवश्यक है। आपने ईंटें बनती कई बार देखी होंगी। यदि मिट्टी नरम हो तो भी ईंट ख़राब हो जाती , यदि सांचा ढीला हो तब भी ईंट टेढ़ी होजाती है। दि सांचा और मिट्टी दोनों ही ख़राब हों तब तो क्या

कहना है । यही दशा मनुष्य के बच्चे की है, जब तक स्त्री और पुरुष दोनों ही दोष रहित न हों बालक बलवान् उत्पन्न नहीं हो सकता । जन्तुओं को परमात्मा ने एक एक गुण दिया है, कोकिल का कण्ठ सुरीला, तोते का नाक अच्छा, मृग के नयन सुन्दर, परन्तु मनुष्य के बच्चे में ईश्वर ने सम्पूर्ण गुण इकट्ठे कर दिए हैं, अब यदि हम अपने दुष्कर्मों से उन्हें ख़राब उत्पन्न करें तो इसमें परमात्मा का क्या अपराध । प्राचीनकाल में मनुष्य ऐसे उत्पन्न नहीं हुआ करते थे जैसे—आजकल हम हैं ।

प्राचीनकाल के आदर्श भीम, अर्जुन, राम और हनुमान जैसे मनुष्य थे, और यह केवल ब्रह्मचर्य्य का प्रताप था । अब भी यदि दुष्ट विचारों की ठोकर न लगे तो पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रखना कोई बड़ी बात नहीं ।

विश्वास की आवश्यकता ।

विद्या और ब्रह्मचर्य्य के पश्चात् तीसरी आवश्यक बात प्रत्यय अर्थात् विश्वास है । जितना जगत् में किसी का विश्वास है उतना ही उसका गौरव है । जिस प्रकार वृक्षों के लिए जल है उसी प्रकार मनुष्यों के लिए विश्वास है । इसलिए सबसे पहले अपने आप पर विश्वास करो । जब तुम्हें अपने आप पर विश्वास नहीं तो दूसरों को कैसे तुम्हारा विश्वास होगा । जो जाति विश्वास से शून्य हो जाती है उसका कोई ठिकाना नहीं रहता, संसार में वह नीच समझी जाती है ।

स्वामी विवेकानन्द ने अपनी पुस्तक में एक शोकजनक गाथा लिखी है । वे लिखते हैं, जापान में पहले जब कोई भारत निवासी जाता तो वे उसका बड़ा आदर संमान करते और छाती से लगाते थे । वहां एक बड़ी भारी लाईब्रेरी है जिसमें हर एक को जाने की आज्ञा नहीं, परन्तु भारत निवासियों के लिए उसका भी दरवाज़ा खुला था, परन्तु एक ऐसी शोकजनक घटना हुई जिसने सदा के लिए इस लाईब्रेरी का दरवाज़ा भारतीयों के लिए बन्द कर दिया और उन का विश्वास खो दिया । एक बार लाईब्रेरी में एक भारतनिवासी पुस्तक पढ़ रहा था । पुस्तक का एक पृष्ठ उसे ऐसा पसन्द आया कि आंख बचा कर उसने वह पृष्ठ फाड़ लिया और चल दिया, परन्तु देख रेख पर पकड़ा गया और उसी दिन से भारतीयों के लिए उस लाईब्रेरी का दरवाज़ा बंद हो गया ।

यही दशा धर्म की है, प्रत्येक मनुष्य को यह समझना चाहिए कि जितना मैं उन्नत हूंगा उतना मेरा धर्म्म उन्नति करेगा, और जितना में दुष्कर्म्म करूंगा उतना ही अपयश मेरे धर्म का होगा । स्वामीजी ने भी अपनी पुस्तकों में परस्पर विश्वास पर बड़ा बल दिया है ।

शुक्र का उदय और अस्त ।

आजकल जो पत्रीयां वर्त्तमान हैं उनमें एक बड़ी विचित्र बात होती है । लिखा होता है, कि अमुक मास

में शुक्र का उदय होगा और अमुक मास में अस्त । शुक्र के उदय के मास में विवाह होते हैं शेष में नहीं । वे शुक्र से शुक्र तारे का अर्थ लेते हैं, परन्तु यह उनकी भूल है विवाह का तारे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और यदि तारे से प्रयोजन होता तो आज हिन्दुओं में असंख्य विधवाएं दिखाई न देतीं । यहां शुक्र से अभिप्राय है वीर्य्य का, अर्थात् उस पुरुष से विवाह कराना चाहिए जो वीर्य्यवान् हो, जिसका शुक्र व वीर्य्य उदय हो । जिनका शुक्र उदय होता है, उनके मुख-मण्डल पर सेब की न्याई लाली छा जाती है, परन्तु यहां मैं देखता हूं सबके चेहरों पर स्याही और ज़र्दी छा रही है। एक बात और कह कर मैं अपने व्याख्यान को समाप्त करता हूं, वह यह कि विद्या ब्रह्मचर्य्य और विश्वास के साथ साथ समय की प्रतीक्षा करना भी सीखो । कभी ऐसी उतावली न करो जिससे तुम्हारा बना बनाया खेल बिगड़ जाए । वही मनुष्य सफल होते हैं जिनमें समय और स्थान के पहचानने की योग्यता होती है । यदि इन बातों को विचार कर इन पर चलोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा । संसार तुम्हारी कीर्त्ति और यश को गाएगा ।

मनुष्य जीवन की सफलता।

सज्जन महानुभावो! वेद कहता है कि परमेश्वर महान् है, सब पदार्थ उसके गर्भ में हैं, मनुष्यमात्र के लिए उसी की पूजा उपासना करनी चाहिए। उसका विज्ञान तारा मण्डल के देखने से पूर्ण प्रतीत होता है। जैसे प्रत्येक वृक्ष का आधार उसका मूल है उसी प्रकार समस्त संसार का आधार परमेश्वर है। संसार के सारे पदार्थ परिवर्तनशील हैं परन्तु परमात्मा एक रस है। जिसको यह आवश्यकता हो कि वह एक जैसा रहे उसको उचित है कि वह परमात्मा की उपासना करे, जीवात्मा के लिए उसकी उपासना के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

स्वार्थ त्याग ही सफलता की कुञ्जी है।

जब तक मनुष्य से स्वार्थ का परित्याग न हो जाए, उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। एक परिवार अथवा देश क्यों बिगड़ जाता है, इस लिए कि उस में स्वार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। जितनी खुदगरज़ी की मात्रा किसी में बढ़ जाएगी उतना ही शीघ्र वह नष्ट हो जाएगा। स्वार्थ का त्याग ही मनुष्य के सुधार का सच्चा मार्ग है, वेदों और उपनिषदों में इसके अनेक दृष्टान्त हैं। अमेरीका और अन्य उन्नत देशों की

अवस्था सुन कर हमारे मुंह में पानी भर आता है, परन्तु हम उन साधनों पर विचार नहीं करते जिनकी कृपा से उन्होंने उन्नति की है। एक रूप में तो हमारा देश भी इस समय अमेरीका बना हुआ है। अमेरीका में एक रुपये का तीन छटांक से अधिक घी नहीं मिलता अब यहां भी पांच छटांक से अधिक घी नहीं मिलता। वहां तो ३ छटांक घी खरीद कर निर्वाह हो जाता है क्योंकि वहां रुपया बहुत है, परन्तु यहां रुपया इतना नहीं है इस लिए यहां घोर आपत्ति आने वाली है। आप ने बम का गोला देखा होगा, यदि नहीं तो वह गोला अवश्य देखा होगा जो विवाह शादी के अवसर पर चलाया जाता है, उस गोले में बारूद और छोटे २ कंकर भरे जाते हैं, ज्यों ही गोले को आग दिखलाई अथवा भूमि पर पटका गोला फट गया, गोला फटने पर सब से अधिक हानि उस मनुष्य की होती है जो उसके निकट होता है, जिसने सच्चाई को अपने स्वार्थ से दबाया था। यदि उन्नति के मार्ग पर चलना है तो स्वार्थ को छोड़ दो अन्यथा उन्नति की बातें करना छोड़ दो।

ऋषि दयानन्द स्वार्थ से कितना परे थे इसके लिए एक दृष्टान्त देता हूं:—

मैं एक बार छपरा में गया तो देखा कि एक मन्दिर का पुजारी बड़े प्रेम से हवन कर रहा है। मैंने

उससे पूछा, महाराज ! यह क्या ? मूर्त्तिपूजा और हवन ! उसने बतलाया हवन से प्रेम मुझे स्वामी दयानंद की कृपा से हुआ है । मन्दिर की पूजा तो पेट के कारण है, मेरा सच्चा विश्वास इस पर नहीं है । जब स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ करने जाते थे तो मैं उनकी पुस्तकें उठा कर ले जाता था । इस पुजारी ने मुझे स्वामी जी के जीवन की एक घटना इस प्रकार सुनाईः—

छपरा के पास एक छोटी सी रियासत है वहां के रईस ने अपने पण्डितों से कहा वे स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करें । सोलह पण्डित मिल कर शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हुए । रईस ने सोलह चौकियां एक ओर बिछा दीं और उनके संमुख दूसरी ओर एक चौकी बिछा दी जब वे सोलह पण्डित आकर चौकियों पर बैठ गए तो उस रईस महाशय ने अपना सेवक स्वामी जी की ओर भेजा। छः फुट और पांच इंच का जवान जिस समय कमरे के अन्दर प्रविष्ट हुआ तो पण्डित लोग भौंचक्के रह गए साहस न पड़ा कि स्वामी जी से बात कर सकें, परन्तु कुछ तो कहना ही था रईस महाशय की ओर मुंह करके बोले आपने हमारे लिए लकड़ी की चौकियां मंगाई हैं और स्वामी जी के लिए सफ़ेद पत्थर की, आपने हमारा अपमान किया है हम शास्त्रार्थ नहीं करते । जब उठ कर चलने लगे तो स्वामी जी ने कहा कि मैं भी संगममर की

चौकी को छोड़ता हूं, आओ, भूमि पर बैठ कर शास्त्रार्थ करें। यह था स्वार्थ त्याग

परन्तु यहां दशा क्या है, इतने आर्य्यपुरुष बैठे हैं, सन्ध्या उपासना यह तो करते होंगे, परन्तु प्रेम से स्वार्थ रहित होकर नहीं। कुर्सी पर बैठे हैं तो कर ली, हाथ मुंह धोया है या नहीं, इसकी कुछ पर्वाह नहीं। अर्थात् सन्ध्या भी करेंगे तो स्वार्थ के साथ, जिस से पांच सात मिनट की हानि न हो वैसे गप्पें हांकने में चाहे सारा दिन व्यतीत हो जाए।

एक पुरुष चारपाई पर माला फेर रहा था। एक मनुष्य उसकी छत पर चढ़ कर नाचने लग गया। उसने पुकारा ऊपर कौन है, उत्तर मिला कि ऊंट नाच रहा है वह चकित होगया और पूछा कि चार मंजिल ऊपर ऊंट कैसे चढ़ सकता है, ऊपर वाले ने उत्तर दिया जैसे चारपाई पर चढ़ कर ईश्वर की उपासना हो सकती है।

किसी मेले में एक वैश्य का लड़का गिर गया, लोगों ने उसके पिता को आकर बतलाया। उसने कहा, वैश्य का लड़का कभी बिना प्रयोजन नहीं गिरता, अवश्य किसी स्वार्थ से गिरा होगा, लोग आश्चर्य रह गए कि यह मनुष्य अच्छा है। इसका लड़का गिरा और उसके चोट आई, परन्तु यह कहता है किसी स्वार्थ से गिरा होगा। कुछ समय के पश्चात् लड़का घर पहुंचा, उस

ने पूछा कि कैसे गिरा था । लड़के ने उत्तर दिया कि भूमि पर एक सोने की मोहर पड़ी हुई थी, मैं यदि उसे वैसे ही झुक कर उठा लेता तो लोग मुझ से छीन लेते । मैं गिर कर चिल्लाने लगा कि मुझे चोट लगी है और इस बहाने से मोहर मुंह में डाल ली, लोगों ने मुझे मिठाई ले दी । होते होते यह बात लोगों तक पहुंच गई कि वैश्य का लड़का बिना स्वार्थ के नहीं गिरता । अब यदि सचमुच भी किसी वैश्य को चोट आए तो कोई उस से सहानुभूति नहीं करता ।

उपनिषदों में एक गाथा आई है कि एक बार इन्द्रियों का परस्पर विवाद हो पड़ा और प्रत्येक इन्द्रिय अपने आप को बड़ी समझने लगी । सब बारी बारी शरीर में से निकल गई परन्तु शरीर जीवित रहा परन्तु जब प्राण निकले तो शरीर मर गया, क्योंकि प्राणों में स्वार्थ नहीं, वे जो कुछ लेते हैं इन्द्रियों को बांट देते हैं अपने पास कुछ नहीं रखते । जो लोग प्राणों के समान स्वार्थ का परित्याग करके संसार में रहेंगे, उन्हीं व्यक्तियों और जातियों का कल्याण होगा । संसार में ऐसे भी लोग हैं जो अपना स्वार्थ पूरा करके भी काम बिगाड़ देते हैं, वेद कहते हैं कि ऐसे मनुष्य बहुत अधोगति को प्राप्त होते हैं । जहां स्वार्थ आएगा उसकी सेना विरोध उसके साथ आएगी ॥

किसी ने कहा है:—

घटे जब वैर विरोध विकार, बढ़े तब विनय विवेक विचार।

होवे सुखद समाज सुधार, पीछे हो भारत का उद्धार।

विरोध के रहते हुए विवेक और सुधार कैसे रह सकते हैं, संसार में पिता पुत्र माता पिता और भाई बहन का अतीव निकट सम्बन्ध है, परन्तु अवस्था यह है कि न भाई भाई के कहने में है, न पुत्र पिता की आज्ञा में है फिर उन्नति हो तो कैसे हो? अंग्रेजी वालों का सिद्धान्त है कि निर्बल संसार में नहीं रह सकते। यह सिद्धान्त पशुओं और जानवरों की अवस्था में तो ठीक परन्तु मनुष्यों की अवस्था में नहीं। यदि मनुष्यों की अवस्था में भी यही सिद्धान्त काम करें तो फिर मनुष्यों और पशुओं में क्यों भेद रह गया। न्याय यह चाहता है कि बलवान् निर्बलों की रक्षा करें क्योंकि दो कमज़ोरियों में बल विद्यमान है। बालपन की अवस्था कमज़ोरी की अवस्था है, उसके पश्चात् यौवन और फिर बुढ़ापा फिर कमज़ोरी की अवस्था। इस पर जो अभिमान करे उससे बढ़ कर मूर्ख कौन हो सकता है?

स्वामीजी लिखते हैं बढ़ी हुई शक्तियां केवल स्वार्थ-वश होकर गिरती हैं। अभिमान गिरावट की पहली सीढ़ी है। जातियों के इतिहास को पढ़ कर देखो कि किस प्रकार उन्होंने स्वार्थ रहित होकर भावी सन्तानों

के लिए मैदान साफ़ किया । अपने इतिहास में रामचन्द्र जी का समय देख लो, कैकयी ने स्वार्थवश होकर रामचन्द्रजी को सिंहासन से वंचित किया, परन्तु भरत ने इतना स्वार्थ त्याग किया कि आज जगत् में उसका नाम अमर है ॥

अमेरीका आदि देशों के गीत गाने से भारत उठ नहीं सकता । यहां तो रोटी की चिन्ता है, हमें उनके ५७ मंजिल के मकानों से क्या लाभ । यहां के एक वर्ष के दान को रोक लो, यहां भी ६० मंज़िल के मकान बन सकते हैं । यदि किसी रोगी की दशा विगाड़नी हो तो बार २ उसके सामने स्वादिष्ट पदार्थों की बातें करो ॥

एक ओर रामायण में भरत का त्याग है तो वहां दूसरी ओर महाभारत में दुर्योधन का स्वार्थ है जिसने देश को इस अधोगति को प्राप्त किया ॥

स्वार्थ त्याग का एक और उदाहरण ।

शाहजहां की बेटी बीमार हुई, वैद्यों हकीमों का इलाज किया, आराम न हुआ, किसी ने कहा कि डाक्टर बाटन नामी एक अंग्रेज़ डाक्टर है, उसका इलाज कराएं । डाक्टर बाटन को बुलाया गया, उसके हाथ से रोग दूर हो गया । बादशाह ने कहा मांगें आप क्या मांगते हैं, उसका विचार था कि यह चार पांच हजार रुपया मांगेगा अथवा कुछ भूमि । परन्तु बाटन

के स्वार्थ त्याग को देखिए कि वह अपने लिए कुछ नहीं मांगता, मांगता है तो यह कि अंग्रेज़ जो यहां व्यापार करने आते हैं, उनसे महसूल न लिया जाए और उन्हें प्रत्येक स्थान पर बिना रोकटोक व्यापार करने की आज्ञा दी जाए। उस समय यह बात साधारण जान पड़ी परन्तु इस थोड़े से स्वार्थ त्याग का फल अंग्रेज़ों का राज्य हो गया। भारत चाहे निकम्मा हो गया परन्तु अब भी जैसा उपज और जैसा अन्न जल इस देश का है, किसी दूसरे देश का नहीं। स्वयं भूखा रह कर संसार को तृप्त करना भारत का ही काम है, इस लिए जहां स्वयं स्वार्थ का त्याग करो, आने वाली सन्तति को भी यही पाठ पढ़ाओ।

हिन्दुओं में से छांटे हुए आर्य्यसमाजी हैं। जितना पुरुषार्थ और उत्साह इनमें है दूसरों में नहीं, परन्तु इनमें भी स्वार्थत्याग थोड़ा है अन्यथा यह सम्भव न था कि आर्य्यसमाज वर्ष भर में एक मनुष्य भी पैदा न कर सकता।

स्वार्थ त्याग के चार अर्थ हैं (१) आत्मा (२) धन (३) जिन बातों से आत्मा परमात्मा को प्राप्त हो (४) जिन बातों से निर्भयता प्राप्त हो। स्वार्थ त्याग करने वालों में यह चार गुण आजाते हैं।

एक गंवार मिट्टी के ढेलों से पक्षियों को उड़ा रहा था। खेत में से उसे पत्थर के चमकदार टुकड़े मिले

वह उन्हीं टुकड़ों से पक्षियों को उड़ाने लगा, केवल एक पत्थर हाथ में रह गया, वह उसे घर ले आया। रास्ते में जवाहरी ने उसे देख लिया, उसने कहा कि इसका मोल ले लो। पूछा क्या दोगे, जवाहरी ने पांच हज़ार बतलाया। गंवार ने कहा मैं ले तो यही लूंगा परन्तु यह बतलाओ कि इसका वास्तविक मूल्य क्या है। उसने कहा पांच लाख में भी यह सौदा सस्ता है। उस समय गंवार की आंखें खुल गईं और वह हाथ मल २ कर रोने लगा कि मैंने अज्ञानवश होकर इस प्रकार के सैंकड़ों पत्थर फैंक दिए।

यही दशा इस समय हम लोगों की हो रही है, हमारे मस्तिष्कों पर आवरण आया हुआ है। पुण्य कर्म्मों से यह मनुष्य जन्म मिला है हम उस गंवार की न्याईं इसे व्यर्थ फैंक रहे हैं, समय जाएगा जब आंखें खुलेंगी, परन्तु उस समय कुछ न बन पड़ेगा क्योंकि यह अल्प आयु समाप्त हो चुकी होगी। इस लिए उचित है कि स्वार्थ का त्याग करके मनुष्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पूरा करें। आपका जन्म सुधरेगा और आने वाली सन्तान आपका यश गान करेगी।

ऋषि का तप।

संसार में कोई भी काम ऐसा नहीं है जिसके करने का साधन तप सिद्ध न हुआ हो। मनुष्य के जीवन में तप ही सार है इसके विना मनुष्य का सम्पूर्ण पुरुषार्थ व्यर्थ है। तप ही निर्बलों को बलवान् बनाता है और पतितों को फिर से प्रतिष्ठा के मार्ग पर चलाता है। तप ही की सहायता से महात्मा लोग दुःखित लोगों को संकट से बचाते हैं, यही कारण है कि उनके नाम सूर्य्य की न्याई संसार में जगमगाते हैं। जिसके प्रभाव से महात्मा बुद्ध के आगे संसार ने शीश झुकाया, जिसकी शक्ति से शंकराचार्य ने वेदविरुद्ध नास्तिक मत को दबाया, जिससे ऋषि दयानन्द जी महाराज ने वेदों का सत्य मार्ग संसार को दिखाया, वह तप ही तो है।

कहां तक कहें जितने महात्मा महानुभाव व भद्र पुरुष संसार में हुए, हैं और होंगे, जिनका उद्देश्य कष्ट उठा कर भी जनता को हित और अहित का मार्ग दिखाना होता है वे सब तपस्वी ही होते हैं।

परन्तु यह बात इसमें आवश्यक है कि सुधारक के जीवन में जितना अंश तप का अधिक होता है उसका किया हुआ कार्य्य उतना ही फलता फूलता जाता है।

सृष्टि की उत्पत्ति भी ईश्वर के तपोबल के आधीन

है जो उसकी सत्ता में विद्यमान है। इस विषय में उपनिषदों की साक्षी है, नक्षत्र मंडल की रचना जिस तपोवल के आधीन है उसकी महिमा को सर्वसाधारण नहीं जान सकते कोई योगी ही जान सकता है। आओ, तनिक विचार करें, हमारी दृष्टि में हिमालय पर्वत सब से बड़ा प्रतीत होता है, परन्तु कुछ ज्ञान दृष्टि के बढ़ने से यह भूगोल जिस पर हम बसते हैं हिमालय की उसके सामने कोई स्थिति नहीं रहती। नारंगी पर जो छोटे छोटे परमाणु उभरे होते हैं उनमें से एक के बराबर हिमालय हो गया। भूमण्डल महान् प्रतीत होने लगा, परन्तु आगे चल कर जब सूर्य्य मण्डल पर ज्ञान दृष्टि का अधिकार हुआ जो भूगोल से तेरह लाख गुना के लगभग है, भूमि की वही स्थिति हो गई जो भूमि के आगे हिमालय की थी। अब जब विचार का एक पग आगे बढ़ा, अनन्त भूगोल सूर्य्य और कोटानुकोटि तारागण इस वृहत् आकाश के गर्भ में लटकते और घूमते हुए अपने स्वामी के भय से मर्यादा का पालन करते और उसका गुण गाते हुए उस जगदीश्वर की सत्ता महिमा और विभूति का स्मरण दिला रहे हैं।

जब उसकी उपासना और भक्ति से योगी का अन्तःकरण विशाल हो जाता है तो यह आकाश जिसमें

कोटानुकोटि तारागण लटकते हुए देख पड़ते हैं एक सूई के छिद्र के बराबर दिखाई देने लगता है, यह योगी का परम स्थान है, मनुष्य की उच्चतम डिगरी है, परन्तु यह उसीको प्राप्त हो सकती है जो तपोबल को धारण करता है । तप के प्रभाव से जब मल और विक्षेप का अभाव हो जाता है तो आत्मा का निज का बल जो दुष्ट संस्कारों से दबा हुआ था निर्मल होकर सत्कर्मों के अनुष्ठान, सत्संग और अनुभव से शनैः २ विस्तार पकड़ने लगता है । इस प्रकार तपस्वी का अन्तःकरण सद्गुणों का केन्द्र होजाता है ।

मनुष्य का आकार तो एकसा है परन्तु मनुष्य का आचार अच्छा बनाने के लिए मनुष्य को तप की बड़ी आवश्यकता है । जहां तप है वहां ओजवर्चस और तेज विद्यमान है, ऐसी सामग्री को पाकर मनुष्य अपने आपको परोपकार करने के लिए सहानुभूति के मार्ग पर खड़ा कर देता है ।

परन्तु पूर्वजन्म कृत सत्कर्म्मों की सहायता और ईश्वर की कृपा के बिना ऐसी शक्ति का प्रकट होना सम्भव नहीं । जब ईश्वर की कृपा और पूर्वजन्म कृत सत्कर्म मनुष्य के सहायक होते हैं तब ही ऐसी शक्ति प्रकट होती है ।

जिस प्रकार बरसने के समय बादल पृथ्वी की

और उसकी तप्त बुझाने और फल फूल उगाने के लिए झुक झुक कर बरसते हैं, इसी प्रकार अविद्या से प्रमाद और आलस्य में फंस कर उस जगदीश्वर को भूले हुए फिर से परम पिता परमात्मा की उपासना की विधि सिखाने और उल्टे मार्ग से हटाने में पूर्णतया तपस्वी का आत्मा झुक जाता है ।

इसलिए तपस्वी वह है जो पहले सद्गुणों को प्राप्त करता और पश्चात् आयु के दूसरे भाग में जगत् को उन्हीं गुणों से युक्त बनाने में यत्न करता है और कीर्त्ति को प्राप्त करता है, काम क्रोध लोभ मोह अहंकार ही मनुष्य को गिराने वाले गुप्त शत्रु हैं, जो मनुष्य इनको अपने अनुकूल बना लेता है वह तपस्वी है और जो उनके अनुकूल हो जाता है वह तप हीन बुद्धि मलीन हो जाता है । तपस्वी ऋषि दयानन्द जी महाराज के पवित्र चरित्र की विचित्रता पर ध्यान दें, कामना यदि थी तो सब के हित की थी, स्वार्थ नाम-मात्र का भी न था ।

शारीरिक बल रखने पर भी गाली का उत्तर गाली, ईंट पत्थर का उत्तर ईंट पत्थर से न देकर भी बारंबार उनके हित की चिन्ता करना क्रोध से रहित होने का प्रमाण है । लाखों की आमदनी के स्थान मिलने पर सचाई के आगे उनको तुच्छ समझना उनके लोभ रहित होने का कारण है ।

परमेश्वर का स्मरण और उसकी प्राप्ति के लिए सुख सम्पन्न घर को छोड़ देना वीतराग का पूरा प्रमाण है, अहंकार न होना इस बात से स्पष्ट है कि अनाथों की रक्षा, पतितों का उत्थान, निरभिमान पुरुषों के बिना कौन कर सकता है। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने पर भी अनुचित अभिमान में फंसी हुई ब्राह्मण जाति का पक्षपात न करना, गुण कर्म्मों की प्रधानता से सब से उच्च पाने का अधिकारी मानना अहंकार के न होने के प्रमाण हैं, ऐसे महात्मा ही संसार के सुधारक हो सकते हैं। सज्जनो! अब उनके जीवन चरित्र पढ़ो, और उसके अनुकूल कार्य्य करो, यही मार्ग तुम्हारे आत्मा को उच्च बना सकेगा॥
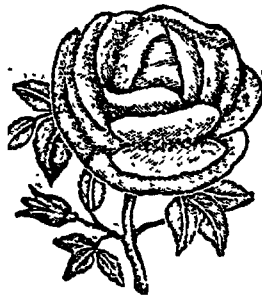
ऋषि जीवन से शिक्षा ।

सज्जन पुरुषो ! संसार की अवस्था बड़ी विचित्र है। कभी कभी समय ऐसा विपरीत होजाता है कि मनुष्यों के जीवन के लिए हानिकारक होजाता है। इस समय की विचित्रता को आप देखें, मनुष्यों के अन्तःकरण कैसे व्याकुलता से पूर्ण हो रहे हैं, विपत्तियों के साथ मनुष्य समाज का समागम हो रहा है ।

तीन प्रकार के दुःख ।

तीन प्रकार के दुःख होते हैं (१) आधिदैविक (२) आधिभौतिक (३) आध्यात्मिक ।

(१) समय पर वर्षा न होने और वज्रपात आदि से जो दुःख होते हैं, वे आधिदैविक कष्ट होते हैं। (२) आधिभौतिक कष्ट वे होते हैं जो मनुष्यों से मनुष्यों को होते हैं जैसे किसी मित्र व सम्बन्धी के मरण से जो दुःख होता है वह आधिभौतिक कष्ट है । (३) मोह शोकादि से जो कष्ट होता है वह आध्यात्मिक दुःख है ।

मनुष्यों की भूलों से इस समय तीनों प्रकार के दुःख हमारे देश में विराजमान हैं और यह परंपरा से चले आरहे हैं । जब मनुष्य परमेश्वर की शक्ति से पृथक् होजाते और उस परमात्मा की उपासना दिखला कर

अपना प्रयोजन सिद्ध करने लग जाते हैं तो उस समय यह तीनों कष्ट विराजमान होजाते हैं।

दुःख दूर कैसे हों ?

प्रकाश के न होने से अन्धकार विद्यमान है जब तक प्रकाश न लाओगे अन्धकार विद्यमान रहेगा। प्रकाश के लाते ही अन्धकार भाग जाएगा। इसी प्रकार परमात्मा को भुला देने से यह सब कष्ट आते हैं। जब परमात्मा का स्मरण करके उसके साथ सम्बन्ध जोड़ेंगे, सम्पूर्ण दुःख अपने आप दूर हो जाएंगे। इस समय विश्वभर में जो व्याधि फैल रही है और जिस से चारों ओर हाहाकार मच रहा है, उसको दूर करने के लिए भी पुरुषों को उचित है कि वे परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ें उससे विमुख होने से ही नाना प्रकार की व्याधियां फैलती हैं।

ऋषि जीवन और मनुष्य जीवन का भेद।

आज जो कुछ कथन करना है वह ऋषि दयानन्द के विषय में है। जब हम उनके जीवन पर दृष्टि डालते हैं, तो पता लगता है कि उनका उपक्रम और उपसंहार कैसा विचित्र है और हम में और उनमें कितना भेद है। परमात्मा ने सब मनुष्यों को एकसी शक्तियां दी हैं, जो उनको संभाल कर रखता है उस पर ईश्वर की दयालुता नहीं कह सकते किन्तु वह प्रसन्न देख पड़ता

है और जो उन दी हुई शक्तियों को नहीं संभालता उस पर ईश्वर का क्रोध नहीं कह सकते परन्तु वह दुःखी जान पड़ता है । बात सीधी है, जो जिसकी आज्ञा का पालन करता है, वह उस पर प्रसन्न है और उसकी छाया उस पर पड़ती है । जिसने ईश्वर की आज्ञा का साङ्गोपाङ्ग पालन किया है, वह ईश्वर की प्रसन्नता का पात्र बन जाता है । संसार में तीन प्रकार के जीवन दिखाई देते हैं, एक वे लोग हैं जो अपने जीवन से सैंकड़ों मनुष्यों को सुखी बनाते हैं, दूसरे वे जो अपने जीवन से सैंकड़ों को दुःखी बना देते हैं, और तीसरे वे जो न सुखी और न दुःखी बनाते हैं । जो अपने जीवन से लोगों को सुखी बनाते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जिन्होंने परमात्मा की आज्ञा का पालन किया है, ऐसे मनुष्य उस जलते हुए दीपक की न्याईं हैं जो अपने शरीर से सैंकड़ों को प्रकाशित करता है । स्वाभाविक दीपक को तीक्ष्ण से तीक्ष्ण वायु बुझा नहीं सकता परन्तु कृत्रिम दीपक थोड़े से वायु से बुझ जाता है । इसी प्रकार ऋषियों का जीवन परमात्मा से लिया होता है उसको बाहर की शक्तियां बुझा नहीं सकतीं, परन्तु मनुष्यों के जीवन पर प्रत्येक बाहर की शक्ति अपना प्रभाव डालती है । मैंने ऋषि के उपक्रम और उपसंहार के विषय में कहा था उपक्रम आरम्भ और उपसंहार

समाप्ति को कहते हैं । जिसका आरम्भ और समाप्ति आदि और अन्त अच्छा हो तो यह अवश्य है कि उसके जीवन का मध्यभाग भी सत्कर्म्मों में व्यतीत हो। हम में और ऋषियों में यही भेद है, ऋषि लोग जब पग उठाते हैं तो उसी ओर चलते हैं जिसकी समाप्ति नेकी पर हो, परन्तु हम लोग अन्धाधुन्ध ॥

आप जानते हैं कि स्वामीजी के कार्य्य का आरम्भ परमात्मा की खोज और उसकी प्राप्ति से होता है और उनके जीवन का उपसंहार परमात्मा के चिन्तन में होता है। आदि और अन्त को देख कर हम कह सकते हैं कि उनके जीवन का मध्यभाग भी नेकी में व्यतीत हुआ होगा। यदि मध्यभाग किसी दूसरी ओर ख़र्च होता तो यह सम्भव था कि अन्तिमभाग भगवान् के स्मरण में व्यतीत होता।

पुनर्जन्म का दृष्टान्त।

पुनर्जन्म का दृष्टान्त ले लो। जब बालक उत्पन्न होता है तो एक प्रकार के स्वप्न से वह जागता है। उसे अपने स्वप्न की सब बातें याद होती हैं, परन्तु यह शक्ति नहीं कि उनका वर्णन कर सकें, इस अवस्था में अपने पुरातन संस्कारों का स्मरण करके कभी रोता और कभी हंसता है परन्तु जब बड़ा होता है और बोलने की शक्ति आती है तो मोह माया में फंस कर पुरानी सब

बातों को भूल जाता है । गीता में कहा है " यम् यम् वाऽपि स्मरणभावम् " मृत्यु के समय जिस बात का ध्यान आता है उससे प्रभावित होता हुआ जीव उसी जन्म को धारण कर लेता है ।

उपनिषद् में भी ऐसा कहा है, कि मरण समय में जैसा मन का संकल्प होता है, जीव वैसी ही योनियों में जाता है । जिस प्रकार इस जगत् में हम लोग पहला घर नहीं छोड़ते जब तक दूसरा न लें इसी प्रकार जीव जब तक दूसरा चोला न बन जाए पहले चोले को नहीं छोड़ सकता ।

ऋषि जीवन की विलक्षणता ।

एक सेठ लाखों रुपये लगा कर मकान बनवाता है, मकान बनते ही मर जाता है । मरते समय उसको बहुत समझाया जाता है कि आप परमात्मा की ओर ध्यान करो, परन्तु बारम्बार उसका ध्यान मकान की ओर ही जाता है, किसी का ध्यान अपनी सन्तान की ओर जाता है । स्वामी जी ने कई समाजें बनाई, कई पाठशाला खोलीं, संसार के उपकार के लिए और कई काम खोले, परन्तु मृत्यु के समय उन्हें किसी का ध्यान नहीं आया । ध्यान आया तो उस परमेश्वर का जिसकी प्राप्ति के लिए आरम्भ किया था ।

"भस्मान्तꣳशरीरं" वेद ने भी यही समझाया है, कि हे मनुष्य ! शरीर के वियोग के समय उचित नहीं

कि तू संसार के धन्धों में फंसे, इस समय परमात्मा का स्मरण कर जिसको भूल कर जन्म के चक्र में पड़ा था और जिसको प्राप्त करके फिर उस चक्र से छूट सकता है परन्तु हम लोग इस बात को भूल जाते हैं, ऋषि नहीं भूलते।

ऋषि दयानन्द के प्रादुर्भाव का समय।

जिस प्रकार धूम्रकेतु कभी कभी संसार पर चमकते हैं, उसी प्रकार मुक्त आत्मा परमात्मा की आज्ञा से संसार के उपकार के लिए कभी कभी आते हैं। स्वामी दयानन्द ऐसे ही एक मुक्त आत्मा थे जिनको परमात्मा ने संसार के उपकार के लिए भेजा।

स्वामीजी से पहले देश की क्या अवस्था थी, इसका अनुमान आज नहीं लग सकता। वेदशास्त्रों का जानने वाला कोई नहीं रहा, संस्कृत के पण्डितों से यदि कोई वेद का अर्थ पूछता तो वे कहते, इनका अर्थ कुछ नहीं। देश में चारों ओर से अंधकार छाया हुआ था, ऐसे समय स्वामी दयानन्द का जीवन किसने बनाया? स्पष्ट कह सकते हैं, परमात्मा ने, किसी मनुष्य की शक्ति न थी।

ऋषि दयानन्द का स्वप्न।

मधुवन में एक साधु ने मुझे स्वामीजी के जीवन की एक घटना सुनाई जिसको सुन कर मुझे पूर्ण विश्वास

हो गया कि स्वामीजी ने जो कुछ किया वह परमात्मा की प्रेरणा से किया। साधु ने बतलाया कि स्वामी जी विद्या समाप्त कर चुके तो उन्हें प्रचार का विचार हुआ परन्तु संसार के विरोध के भय से इस विचार को छोड़ बैठे। उसके थोड़े ही दिन पश्चात् उन्हें स्वप्न आया, कि वे नदी के तीर पर विचर रहे हैं, दूरसे उन्होंने एक नौका आती देखी जिसमें कुछ मनुष्य मदिरा से उन्मत्त हुए हुए राग रंग उड़ा रहे थे, और नौका को अन्धाधुन्ध समुद्र की ओर ले जा रहे थे। कुछ दूर तक स्वामीजी भी नौका के साथ साथ तीर पर चलते गए, अन्त में जब उन्होंने देखा कि अब ज्वारभाटा दूर नहीं रहा तो स्वामी जी ने उन लोगों को पुकारा, कि तुम किधर जा रहे हो। नौका वालों ने उत्तर दिया कि हम इस नदी का अन्त देखने जा रहे हैं। स्वामी जी ने कहा कि अब समुद्र बहुत थोड़ी दूर रह गया है यदि आगे गए तो नौका डूब जाएगी इसलिए तुम्हें उचित है कि वापस चले जाओ। शराबियों ने कहा कि हमने तुम्हारे जैसे कई साधु देखे हैं तुम हमारे रंग में भंग डालना चाहते हो, जाओ, जहां हमारा जी चाहेगा जाएंगे तुम्हें क्या? स्वामी जी ने उन्हें फिर समझाया परन्तु वे नहीं माने। अब उन्होंने सोचा कि यह तो मानते नहीं और

ज्वारभाटा बिलकुल निकट है यदि नौका और आगे बढ़ी तो सब डूब जाएंगे इस लिए इनकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, यह सोच कर स्वामी जी नदी में कूद पड़े । ज्योंही स्वामी जी ने नौका को हाथ लगाया, उन्होंने ईंट पत्थर लाठी और गालियां स्वामीजी पर बरसानी शुरू कीं, परन्तु स्वामी जी ने इसकी कुछ पर्वाह न करके अपने बल से नौका को तीर पर लगाया और फिर उन्हें डांट कर बोले, कि अब तुम तीर पर पहुंच गए हो यदि तुमने फिर नौका को नदी में चलाया तो एक एक को पकड़ कर पीट डालूंगा । इस प्रकार उनका डांटना था कि सब की बुद्धि ठिकाने आगई । इसके पश्चात् स्वामी जी की आंख खुल गई । कई दिन स्वामी जी इस स्वप्न और संसार की अवस्था पर विचार करते रहे । अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे कितना ही कष्ट क्यों न सहन करना पड़े, मैं अपने उपदेशों से इस घोर अन्धकार को दूर करूंगा ।

स्वामी जी से पहले अवस्था क्या थी ? संस्कृत के पण्डित तो विद्यमान थे परन्तु वैदिक ज्ञान से सर्वथा शून्य थे । दूसरी ओर साइंस का ज़ोर, जब कोई पुराणों पर शंका करता तो निरुत्तर हो जाते । यदि उनको स्वामी जी सहारा न देते तो परिणाम क्या होता,

पुराणों को उन्होंने मानना ही न था और वैदिक ज्ञान से वे कोरे ही थे, ईसाई होते व मुसलमान। अब यदि इतना बड़ा विद्वान् दल हम में से निकल जाता तो शेष क्या बचता। इसलिए स्वामी जी ने पुराणों की गाथा छुड़ा कर वैदिक ज्ञान दिया और साहस दिया कि वे निर्भय होकर साइंस से संग्राम करें। जहां साइंस का अन्त होजाता है वहां से वैदिक ज्ञान का आरम्भ है।

एक आक्षेप और उसका उत्तर।

आक्षेप किया जाता है कि जहां कहीं स्वामीजी को अपने प्रयोजन की बात नहीं मिली झट कह दिया यहां मिलावट है। यह आक्षेप सर्वथा मिथ्या है। आज से तीन वर्ष पूर्व गोसाईं तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं कि धर्म पुस्तकों में भी मिलावट की गई। तुलसीरामायण में भी मिलावट हुई। और आजकल जो रामायण छपती है उसमें से प्रक्षिप्त श्लोक निकाल दिए जाते हैं।

देखिए गोसाईंजी क्या कहते हैं:—

हरित भूमि तृण संकुला, लिप्त हुए सब ग्रन्थ।

यह तीन सौ वर्ष पूर्व की साक्षी है। स्वामी जी न सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि महाभारत से एक सहस्र वर्ष पूर्व आलस्य प्रमाद आने लग गया था, गीता सब की साक्षी देती है। कृष्ण कहते हैं " हे शूरवीर अर्जुन !

जिन वेद शास्त्रों के अनुसार चलकर आर्य्य जाति विद्वान् और शूरवीर होती है उनका प्रचार दिन प्रतिदिन घट रहा है।" इस से सिद्ध हुआ कि स्वामी जी की एक २ बात का मूल विद्यमान है।

स्वामी जी पक्षपात रहित थे।

एक वार रेल में एक मौलवी बड़ी प्रतिष्ठा के साथ स्वामीजी का नाम लेकर कह रहा था कि स्वामी दयानन्द के इसलाम को कुव्वतमर्वी या ब्रह्मचर्य्य की तालीम देकर उस पर बड़ा एहसान किया है, दूसरे ने कहा कि उन्होंने तो क़ुरान का खण्डन किया है और तुम उनकी तारीफ़ कर रहे हो। पहला मौलवी बोला, भाई! स्वामी दयानन्द बेतअस्सुब आदमी था, जिस आदमी ने अपने घर के पुराणों और दूसरी किताबों का खंडन किया, उससे यह उम्मीद रखना कि वह इसलाम के नुक़स को ज़ाहर न करे यह फ़िज़ूल है॥

सच्चा उपदेष्टा।

कपिल ऋषि ने कहा है कि उपदेश करने वाला और सुनने वाला यदि ये तीनों मर्य्यादानुसार रहें तो संसार धर्म मार्ग पर चलता है अन्यथा अन्धपरम्परा चल जाती है। भारतवर्ष में आजकल अन्धपरम्परा चल रही है, जो चाहता है नया पन्थ खड़ा कर लेता है, और लोग उसके पीछे चल पड़ते हैं। महर्षि कपिल

उपदेश करने का अधिकार केवल जीवनमुक्त को देते हैं। जीवनमुक्त कौन ? जो जैसा उपदेश करे वैसा ही अपने ताईं सिद्ध करे, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार उसके निकट न आए, स्तुति निन्दा में एक रस रहे ॥

स्वामी दयानन्द के जीवन में हम देखते हैं कि कभी इन दोषों से दूषित नहीं हुए। लोग स्वामी जी को गालियां देते थे परन्तु वे उनके साथ प्रेम करते थे ॥

सत्य के वे कितने प्यारे थे इसके कई उदाहरण उनके जीवनचरित्र में मिलते हैं वे निरुपम प्रत्युत्पन्नमति थे। एक बार वे नग्न शरीर पौष मास में प्रातःकाल नदी से घूम कर आरहे थे। रास्ते में कलक्टर साहब मिले और उनसे पूछा, महाराज ! आपका जिसम नंगा है आप को सर्दी नहीं लगती। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि पहले तुम बतलाओ कि तुम्हारा मुंह नंगा है तुम्हें सर्दी क्यों नहीं लगती। कलक्टर साहब ने उत्तर दिया, क्योंकि हमेशा नंगा रहता है इसलिए सर्दी नहीं लगती। स्वामीजी ने कहा तुम्हारा मुंह नंगा रहता है हमारा सारा शरीर नंगा रहता है।

आत्मश्लाघा ।

पिप्पलाद ऋषि के पास छः ऋषि जाकर जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं। ऋषि उत्तर देते हैं:—

ब्रह्मचर्य्यम् ।

पहले एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य धारण करो, फिर मेरे पास आओ, यदि मुझे तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर आता होगा तो दे दूंगा । शंकराचार्य्य पिप्पलाद ऋषि के सम्बन्ध में लिखते हैं कि पिप्पलाद ऋषि में यह सामर्थ्य थी, कि जो कुछ उनसे पूछा जाता वे बतलाते परन्तु इस विचार से कि कहीं अहंकार उनके निकट न आने पाए, उन्होंने उत्तर दिया कि यदि मुझे उत्तर आता होगा तो दूंगा।

कन्नौज में किसी ने कहा, स्वामीजी आप ऋषि हैं, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप लोग जो चाहे कहें परन्तु यदि ऋषियों के समय में मैं होता तो उनकी पाठशाला का एक विद्यार्थी होता ।

एक बार फ़रुख़ाबाद के हिन्दुओं और आर्य्यों में लड़ाई हुई । अभियोग चल पड़ा, आर्य्यों ने स्वामीजी को कहा कि आप साक्षी दें । स्वामी ने कहा यदि मुझ से किसी ने पूछा तो जो कुछ मैंने देखा है कह दूंगा । आर्य्यों ने पूछा कि आप क्या कहेंगे । उत्तर दिया कि मैं यह कहूंगा कि इस लड़ाई में दोष आर्य्यों का है । वे लोग कहने लगे कि तब तो हम मारे जाएंगे और समाज को हानि पहुंचेगी । स्वामीजी ने कहा, चाहे तुम मारे जाओ, चाहे समाज न रहे, मैं तुम्हारी ख़ातिर अपने आत्मा का हनन नहीं कर सकता ।

जीवन मुक्त पुरुष और हममें भेद यह है कि उन्होंने काम क्रोध को जीता हुआ होता है परन्तु हमने नहीं।

ऋषि का अन्तिम स्वीकार क्या था।

दिवाली के दिन जब ऋषि मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे, पचास साठ मनुष्य उनके पास थे। जब मृत्यु का समय निकट आया स्वामीजी ने सबसे पहले कहा "कुछ प्रकाश कुछ अन्धेरा" इसका अर्थ जहां तक मैं समझा हूं यह था; कि दीपमाला की रात्रि अन्धेरी होती है; और लोग इस रात प्रकाश करते हैं तो कुछ रात अन्धेरा रहता है और कुछ प्रकाश। अथवा इसका अर्थ यह समझ लो कि ऋषि के उपदेशों से कुछ लोगों को प्रकाश होगया है और कुछ अन्धेरे में हैं; पता नहीं लोग अन्धेरे की ओर पग बढ़ाएंगे व प्रकाश की ओर।

(२) ऋषि ने दूसरी बात यह कही कि "सब मेरे पीछे खड़े हो जाओ"। इसका अभिप्राय यह था कि स्वामीजी का लक्ष्य उस समय केवल एक परमात्मा था वे अपने संमुख किसी दूसरी वस्तु को नहीं चाहते थे। दूसरा अर्थ यह है कि स्वामीजी ने उस समय कहा कि अब मैं तो नहीं रहूंगा तुमने मेरे मार्ग का अनुसरण करना।

(३) ऋषि ने तीसरी बात यह कही, कि सब दरवाज़े खोल दो, पूछा गया, ऊपर का भी, उत्तर मिला ऊपर का

भी खोल दो, चारों ओर दरवाज़े तो सांसारिक सुख के लिए, और ऊपर का दरवाज़ा परमात्मा की ओर ले जाने वाला है, अथवा यह तात्पर्य्य समझ लो कि हिन्दुओं ने सबके लिए दरवाज़े बन्द कर रखे थे, स्वामीजी ने अन्तिम वसीहत अन्तिम स्वीकार यह किया कि सब के लिए दरवाज़े खोल दो। वैदिकधर्म मुसलमान ईसाई सबके लिए खुला रहना चाहिए॥

मृत्यु समय में स्वामी जी ने यह तीन उपदेश दिए। मरते समय जो बात कही जाती है वह अपूर्व फल रखती है क्योंकि वह मृतक की कामना होती है, इस अन्तिम वसीहत को प्रत्येक आर्य्य के हृदय में स्थान मिलना चाहिए।

यदि आज हम स्वामी जी के दर्शन करना चाहें तो नहीं कर सकते, परन्तु सत्यार्थप्रकाश में उन्होंने अपने विचारों को प्रकट कर दिया है, उसका स्वाध्याय करने से उनके साथ बात हो सकती है। ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ने से हम ऋषियों के मार्ग पर चल सकते हैं।

पण्डित गुरुदत्तजी स्वामीजी की युक्तियों से निरुत्तर हो जाया करते थे, परन्तु मन नहीं मानता था कि परमात्मा सचमुच कोई है। परन्तु ऋषि की मृत्यु का दृश्य देख कर सब संशय मिट जाते हैं, इनको साक्षात्

हो जाता है कि सचमुच कोई परमात्मा है। ऋषि क्यों हंसते हुए प्राण देते हैं, इसका दृष्टान्त देता हूं।

एक मनुष्य गढ़ा खोद रहा था, खोदते खोदते कुदाली उसके पाओं पर लगी, बड़ा गहरा घाव होगया और रक्त की धार बहने लगी, पीड़ा से वह व्याकुल हो रहा था कि मिट्टी में उसने एक छोटी सी पोटली बन्धी देखी। उठा कर देखा तो उसमें कुछ सोने की मोहरें बंधी थी सब दुःखों को भूल कर घर को दौड़ा और आकर चारपाई पर लेट गया। आपने देखा कि कठोर से कठोर यातना हर्ष के संमुख तुच्छ हो जाती है इसी प्रकार ऋषि के संमुख मृत्यु के मुकाबिले में जब आनन्दस्वरूप परमात्मा होते हैं तो वे प्रसन्नतापूर्वक शरीर को छोड़ देते हैं। आप भी यत्न करो, कि जगत् में रोते आओ और हंसते जाओ। आपके संमुख ऋषि दयानन्द का आदर्श है जिसने हंसते हुए कहा था "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" और प्राणत्याग दिए थे।

जो बल दयानन्द में था वही बल आपमें आना चाहिए, और यह तब हो सकता है जब कि आप ऋषि के अन्तिम वचनों उनकी अन्तिम वसीयत पर चलेंगे।

सत्संग की महिमा ।

नित्य नियम में दृढ़ता—हमारे शास्त्रों में सत्संग की बड़ी महिमा वर्णन की गई है । जब से हम लोगों ने सत्संग को छोड़ा, नाना प्रकार के दुःख उठा रहे हैं । जितने ऋषि मुनि महात्मा इस देश में हो चुके हैं वे सत्संग के प्रताप से । सत्संग के न होने से हम छोटी छोटी बातों को बड़ा समझ रहे हैं । माता पिता की आज्ञा पालना प्रत्येक पुत्र और पुत्री का कर्त्तव्य है परन्तु आज इसमें बड़ा महत्त्व समझा जा रहा है । जब रामचन्द्र जी की माता ने उनसे पूछा कि क्या आप पिता का कहा मानेंगे ? तो उनको बड़ा क्रोध आया और कहा कि क्या कोई ऐसा पुत्र भी है जो पिता का कहा न मानें । आज जो दोनों समय सन्ध्या करता है वह फूला नहीं समाता, परन्तु यह कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं जिस प्रकार रोटी खाना आवश्यक है उसी प्रकार परमात्मा का स्मरण भी आवश्यक है अपने नित्य नियम में प्राचीन आर्य्य लोग किस प्रकार तत्पर रहते थे, इसका एक उदाहरण देता हूं । महाराज रामचन्द्र के भेजे हुए हनुमान जब लंका में पहुंचते हैं और उन्हें जानकी जी नहीं मिलतीं तो वे वाटिका के पास नदी पर पहुंचते हैं, और मन

में यह भाव है कि यदि जानकी जी जीती हैं तो अवश्यमेव वे सायं समय सन्ध्या करने के लिए नदी तट पर आएंगी, मृत्यु में तो संशय है परन्तु सन्ध्या में संशय नहीं ।

कुसंग और सत्संग ।

इन दिनों में लोग आम चूसते हैं परन्तु स्वाद नहीं आता क्योंकि उनमें अभी मिठास नहीं आई, परन्तु जब वर्षा हो जाएगी वे स्वादिष्ट हो जाएंगे । यही नियम मनुष्य जीवन का है । सत्संगरूपी अमृत को पाकर मनुष्य धर्मात्मा बन जाता है, कुसंग से केवल अपना आप ही नहीं वरंच जनसमूह के नाश का कारण होता है । जिस प्रकार वायु मिट्टी को ऊपर ले जाता है परन्तु जल उसको कीच बनाता है, ठीक इसी प्रकार सत्संग मनुष्य को ऊपर उठाता है और कुसंग मिट्टी में मिलाता है ।

किस तरह कुसंग मनुष्य को गिराता है, इसका दृष्टान्त अभी मुझे रेल में मिला । एक मनुष्य गाड़ी में सिगरट पीना चाहता था, वह दियासलाई सिगरट को लगाता परन्तु वह वायु से बुझ जाती । दो तीन-चार उसने ऐसा किया परन्तु काम न बना, अन्त में वह टट्टी में गया और वहां जाकर उसने सिगरट जलाया । टट्टी जाते समय तो लोग नाक और मुंह पर कपड़ा रखते हैं परन्तु सिगरट का कुसंग उसको टट्टी में ले गया है ।

शास्त्रों में कहा गया है कि सत्संग कुसंग से रहित होकर करो । १५ सेर हलवा में यदि एक तोला विष मिला दिया जाए तो सारा हलवा विष हो जाएगा । परन्तु एक तोला विष में १५ सेर हलवा मिला देने से भी विष हलवा नहीं बनेगा, खोटे का कुसंग भले मनुष्य पर भी विपत्ति ले आता है ।

हंस और काक एक वृक्ष पर इकट्ठे रहते थे । काक बड़ा ही कुटिल जन्तु है, वह मन में हंस से वैर रखता था और प्रकट में उसकी मित्रता का दम भरता था । एक दिन मध्याह्न के समय एक यात्री वृक्ष के नीचे आकर सो गया कुछ समय के पश्चात् उस पर धूप आगई हंस ने देखा कि थका मांदा यात्री पड़ा है धूप की गरमी से वह शीघ्र जाग उठेगा, उसने अपने परों को पसार कर उस पर छाया कर दी, यात्री को विश्राम मि । काक ने भी उसको देखा और मन में सोंचा कि आज हंस से प्रतिकार लेने का अच्छा अवसर है, उसने हंस के नीचे होकर यात्री के मुंह पर बींठ कर दी और उड़ गया । गर्म गर्म बींठ का पड़ना था कि यात्री की निद्रा खुल गई और उसने देखा कि हंस पक्ष पसारे वृक्ष पर बैठा है । उसे क्रोध आया कि इसने मेरे मुंह पर बींठ कर दी है, तुरन्त उठा और बंदूक मार कर मार दिया । आपने देखा कि किस प्रकार कुसंग के कारण भलाई का बदला बुराई मिला ।

सत्संग की संसार में बड़ी न्यूनता हो रही है। लोगों के हृदयों में धर्म के लिए श्रद्धा नहीं रही, जो प्राचीन काल में थी। आप उपदेश सुन रहे हैं, तनक सी खड़खड़ाहट कहीं हो आप भागने को तैय्यार हैं। परन्तु एक समय महात्मा बुद्ध का उपदेश होरहा था, इतने में भूचाल आगया कई मकान गिर गए परन्तु जो लोग उपदेश सुन रहे थे उन्होंने हिलने का नाम नहीं लिया।

एक कवि ने सत्सग और कुसंग पर बहुत अच्छा कहा है:—

सत्संग और कुसंग में बड़ा अन्तरा जान ।
गांधी और लोहार की देखो बैठ दुकान ॥

लोहार की दुकान पर उष्ण लोह की चिंगाड़ी से आप बच नहीं सकते, इसी प्रकार गांधी की दुकान पर बैठने से चाहे आपने इतर ना ही लेना हो, सुगन्धि अवश्य ही आपके मस्तिष्क को सुवासित करेगी। यही सत्संग और कुसंग में अन्तर है।

सत्संगसे लाभ।

सत्संग से क्या लाभ होता है, इसको शास्त्रकारों ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है, परन्तु एक दो साधारण बातें बतला कर मैं अपने भाषण को समाप्त करूंगा। पहली बात—

" जाड्यम् धियो हरति "

सत्संग बुद्धि को निर्मल और सूक्ष्म बना देता है। लोग पूछते हैं कि परमात्मा दिखाई क्यों नहीं देता। उपनिषदों में बतलाया है कि वह दिखाई देता है परन्तु सूक्ष्मदृष्टि से। खांड मिट्टी में मिल गई, आप से वह पृथक् नहीं हो सकती, क्योंकि आपके पास इतना सूक्ष्म शस्त्र नहीं, परन्तु च्यूंटियां इसको क्षण भर में पृथक् कर देंगी। ऐसी ही सत्संगी पुरुष की बुद्धि निर्मल होजाती है।

दूसरा लाभ—सत्संग से यह होता है:—

" सिञ्चति वाचि सत्यम् "

सत्संग से वाणी में सचाई आजाती है। इसलिए कहा है:—

जहां सच वहां आप, जहां झूठ वहां पाप।

आजकल महात्मा शब्द की बड़ी मिट्टी ख़राब हो रही है। पार्टियां और दलबंदियां अपने अपने मनुष्यों को महात्मा की उपाधियां दे रही हैं परन्तु शास्त्र बतलाते हैं कि जिस पुरुष का मन वाणी और कर्म एक है वह सच्चा 'महात्मा' है। जिसके मन में कुछ और, दिखलावे के लिए कुछ और, वाणी में कुछ और, तथा अपने स्वार्थ के लिए कुछ और होता है वह 'दुरात्मा' होता है। अब आप सोच लो कि इन में से कितने महात्मा हैं? थोड़ी २ बात बात पर

झूठ बोल देते हैं, सच और झूठ की पहचान नहीं रही। आजकल बहुत से झूठ पालिसी के नाम पर बोले जाते हैं। यह सारी बुराइयां सत्संग से दूर हो सकती हैं। तीसरा लाभ—

"मानोन्नतिं दिशति"

लोहा जल में डूब जाता है परन्तु काष्ठ के साथ लगने से तैरने लगता है। इसी प्रकार बुरे से बुरा मनुष्य सत्संग से भला बन जाता है। वाल्मीकि का दृष्टान्त आपके संमुख है। वह वाल्मीकि जो दिन रात डाके मारा करता था, एक साधु के सदुपदेश से सुधर गया और जब तक संस्कृत की एक भी पुस्तक शेष है उसका नाम अमर रहेगा। कहा है:—

"सत्संगति कथय किं न करोति पुंसाम्"

उपदेशक प्रत्येक व्यक्ति पर किसी विशेष समय पर अपना प्रभाव डालता है। सहस्रों उपदेश सुने जाओ, कुछ फल नहीं होता, परन्तु एक समय ऐसा होता है जब साधारणसी बात से मन पर चोट लग जाती है और उसका प्रभाव होजाता है। अभी मैं मिठा-टिवारण में गया। उपदेश करते हुए साधारण रीति से मैंने मांस भक्षण का निषेध किया और कहा कि इसका खाना धर्म के विरुद्ध है। उसी समय वहां का एक रईस खड़ा होगया और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि

महाराज! मैं आज से मांस खाना छोड़ता हूं और साथ ही हुक्का भी छोड़ता हूं। परन्तु यहां कितना ही मांस के विरुद्ध कहा गया, असर नहीं हुआ। परन्तु समय आएगा जब यही उपदेश इनके आत्मा पर भी चोट लगाएगा।

एक पुरुष की दूसरी स्त्री सदैव उसकी पहली स्त्री के पुत्र के विरुद्ध उसको भड़काया करती थी, उसका विचार था कि यदि यह मर जाए तो मेरा पुत्र एक दिन सारी सम्पत्ति का अधिकारी होगा। नित्य की कहा सुनी से पति पर असर होगया और वह एक दिन अपने पुत्र को मारने के लिए खेत में साथ ले गया। अब उस को साहस न होता था कि वह अपने आत्मज को किसी छुरी व तलवार से मार दे, चाहता यह था कि किसी प्रकार वह हल के नीचे आजाए और बिना किसी प्रकार की निर्दयता के मर जाए। छोटा सा बालक उसके आगे पीछे फिरता और उसका पिता हल को बार बार उसकी ओर लाता। घण्टा डेढ़ घण्टा इसी प्रकार करता रहा कि इतने में उसका हल एक छोटे से पौदे से जा लगा। बालक चिल्लाया कि पिता जी! हल को इस ओर मत लाओ। पिता ने कारण पूछा, उसने बतलाया कि नन्हासा पौदा उखड़ जाएगा। पिता ने कहा, फिर क्या होगा और पैदा हो जाएगा। बालक ने कहा, दूसरे

का उगना निश्चित नहीं है परन्तु जो उग चुका है वह तुम्हारे हल से उखड़ जाएगा । इन शब्दों से पिता के चित्त पर बड़ी गहरी चोट लगी और उसने अपने पुत्र को उठा कर गले से लगा लिया और घर आकर अपनी स्त्री को ऐसा डांटा कि फिर उसने कभी बालक के विरुद्ध न कहा ।

एक और उदाहरण देकर फिर आगे चलता हूं । एक डाकू सदैव मुसाफ़िरों को मारा करता था और उनका माल असबाब लूट लिया करता था । एक दिन एक महात्मा पुरुष घोड़े पर सवार उधर से जारहा था । डाकू ने कहा कि अपना घोड़ा मुझे दे दो और यदि तुम ने कहीं दूर पहुंचना है तो मेरा ऊंट तुम ले लो, परन्तु वह न माना । तब डाकू ने कहा कि अब तुम सावधान रहना मैंने यह घोड़ा अवश्य ले लेना है । यह कह कर वह दूसरे रास्ते से होकर रोगी साधु का वेष बना कर रास्ते में पड़ गया और हाय हाय करने लगा । इतने में वह महात्मा भी वहां पर आ पहुंचा । साधु को इस प्रकार तड़पता देखकर उससे न रहा गया, उसने साधु से पूछा कि आपको क्या कष्ट है ? उत्तर मिला कि मैं पेटदर्द से मर रहा हूं । महात्मा ने कहा कि आप मेरे घोड़े पर चढ़ जाएं, मैं आपको हस्पताल में छोड़ आता हूं । साधु ने कहा कि मुझ से हिला नहीं जाता, महात्मा

ने उसे अपनी पीठ पर चढ़ा कर घोड़े पर बैठा दिया। ज्योंही वह घोड़े पर चढ़ा उसको एड़ी लगाई और महात्मा से पचास गज़ दूर हो अपने वास्तविक वेष में आकर कहा, क्यों भाई! घोड़ा ले लिया कि नहीं। उस समय तो ऊंट लेकर भी घोड़ा नहीं देता था। उसने कहा, निस्सन्देह तुमने घोड़ा ले लिया और उसे वापस भी नहीं मांगता, परन्तु एक बात मेरी अवश्य मानना। डाकू ने कहा, वह क्या? उत्तर दिया कि किसी को कहना नहीं कि हमने साधु का वेष बना कर घोड़ा लिया है वर्ना नेकी का दरवाज़ा सबके लिए बंद हो जाएगा। अच्छे से अच्छे साधु को भी लोग डाकू होने की शंका करेंगे। सुतरां इन शब्दों ने डाकू के हृदय पर चोट लगा दी और वह हाथ बांध कर खड़ा होगया। घोड़ा वापस दे दिया और कहा कि मुझे कुछ और भी उपदेश कर जाओ। इसीलिए उपदेश हर समय और हर स्थान पर दिया जाता है न जाने किस समय किस पर प्रभाव पड़ जाए। इधर के लोगों से तो सत्संग दूर हो चुका है, ब्रह्मा में अभी तक प्रबल है।

वहां एक पुरुष का युवा पुत्र मर गया। तीन चार दिन निरन्तर उसको रोता पीटता देख कर उसके कुछ पड़ोसी आए और उससे अपना रुपया बड़ा ज़ोर देकर मांगने लगे। वह आश्चर्य्य में था कि एक तो पुत्र के

मरने का दुःख और दूसरा इन रुपया मांगने वालों की ओर से दुःख । उसने कारण पूछा, उत्तर मिला कि तुम रुपया मुकर जाने वाले प्रतीत होते हो, परमात्मा ने तुम्हारे पास वह लड़का अमानत के तौर पर भेजा था, उसको आवश्यकता हुई उसने अपनी अमानत वापस लेली, अब तुम तीन चार दिन से रो रहे हो । जब परमात्मा की अमानत देने पर तुमने इतनी दुहाई मचाई है तो हमारी अमानत तुम क्यों देने लगे हो । यह कहना था कि सारा परिवार चुप हो गया, उन्हें शान्ति आ गई, यह है सत्संग । आवश्यकता है कि फिर से तुम लोग सत्संग बढ़ाओ ॥

आर्य्यसमाज ने संसार को सत्संग के झण्डे तले लाना था, परन्तु यह अभागा स्वयमेव घरेलू झगड़ों में फंस गया । जिधर जाओ इसके आपस के झगड़ों की चर्चा सुन पड़ती है । परन्तु स्मरण रखो, आर्य्यसमाज बड़ी भारी विपत्ति को बुला रहा है, निश्चय रखो, इस पर घोर विपत्ति आएगी और उस समय परस्पर समस्त विरोधी शक्तियां मिल जाएंगी, परन्तु उस मेल से कुछ न बन सकेगा ।

बंगाल में एक बार जल का एक भारी हड़ आया । बहुत से मकान, अनेक मनुष्य और बहुत से पशु बह गए । परन्तु जल के मध्य में एक ऊंचे स्थान पर एक

नेवला, सर्प, गाय, सिंह, बिल्ली, कुत्ता और एक अजगर, एक मनुष्य और इसी प्रकार के कई एक विरोधी जन्तु इकट्ठे हो गए। अब नेवला सर्प की ओर आंख नहीं उठाता, सिंह गाय की ओर नहीं देखता, अजगर मनुष्य की ओर नहीं लपकता, विपत्ति के समय उन सबका द्वेषभाव दूर हो गया था, परन्तु इस मेल मिलाप से कुछ लाभ नहीं क्योंकि सबकी शक्ति नष्ट हो चुकी है।

इसी प्रकार आने वाली विपत्ति के समय यदि आर्य्यसमाज की पार्टियां आपस में मिल बैठीं तो इससे क्या लाभ। उनके घरेलू झगड़े तो आर्य्यसमाज को शनैः २ पहले ही निर्बल बना देंगी। इसलिए आओ, अब भी हट जाओ और इस विपत्ति को न बुलाओ।

कैसी पुस्तकों से सत्संग किया जाए।

सत्संग महात्माओं के वचनों द्वारा ही नहीं होता उनके लेख द्वारा भी हो सकता है। एक राजा का मन्त्री छः मास की छुट्टी लेकर वन में चला गया। वहां से उसने कुछ समय पश्चात् राजा को पत्र लिखा कि मैं शान्ति की गंगा में नित्य स्नान करता हूं और महामुनि पातंजलि और गौतम से सत्संग करता हूं। राजा को आश्चर्य्य हुआ कि पातंजलि और गौतम कहां ? यह उसने झूठ लिखा है। वह स्वयं उसको मिलने के लिए गया, जाकर देखा तो उसका मन्त्री वन में एक कुटिया

बना कर वास कर रहा है। एक दो दिन उसके पास रह कर राजा ने पूछा, कि यह बात तो ठीक है कि आप शान्ति की गंगा में नित्य स्नान करते हैं परन्तु पातंजलि और गौतम का संग कहां ? मन्त्री ने तुरंत आले में से योग और न्यायशास्त्र निकाल कर राजा के संमुख रख दिये, और कहा कि बतलाइए आप पातंजलि और गौतम से क्या पूछते हैं। यह है पुस्तकों का संग, परन्तु आजकल के नवयुवक नावल और इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें पढ़ कर अपने बल और वीर्य्य का नाश कर रहे हैं। सदैव ऐसी पुस्तकों को पढ़ो जिनसे जीवन बनता है।

एक महात्मा ऋषि दयानन्द ने सत्संग लगाया, उसी का फल है कि इस रात बीसियों स्थानों पर सत्संग हो रहा है। यह सत्संग ऋषि दयानन्द का सत्संग है। गाड़ी ऐंजिन नहीं बन जाता, परन्तु ऐंजिन के साथ लगने से गाड़ी की गति बहुत तेज़ होजाती है। इसी प्रकार हम यदि ऋषि न भी बन सकें तो ऋषियों के सत्संग से हमारे धर्मात्मा बनने में सन्देह नहीं रहता। इसलिए हमें चाहिए कि ऋषि दयानन्द के पीछे चलें, इस से आपका यश होगा और आने वाली सन्तान सुधरेगी।

——:o:——

आत्मिक बल ।

सबसे पहले एक प्रश्न समझ लो, तो मेरे भाव को फिर आप भलीभान्ति जान जाएंगे । समुद्र के ऊपर बहुत से जहाज़ चलते हैं, एक को तूफ़ान ने घेर लिया, वह अपने मार्ग से दस बीस मील किसी दूसरी ओर भटक गया । जब तूफ़ान शान्त होगया तो उसके कप्तान को क्या सोचना समझना चाहिए, पहला कर्त्तव्य यह है कि मेरा जहाज़ जिस स्थान पर था वहां से कितनी दूर हट गया है । यदि इस बात को ठीक जान लिया तो अपने उद्देश्य पर पहुंच गया और जो बिना विचारे जहाज़ चला दिया, सम्भव है कि मार्ग पर भी आजाए और यह भी संभव है कि सैंकड़ों मीलों की भूल कर जाए ।

भूले हुए जहाज़ के केन्द्र की स्थिति को पहले समझना फिर चलाना होता है । इसी प्रकार संसार सागर में भूली हुई जातियां हैं । यह देखें कि कहां से भूली थी, यदि इसका विचार नहीं करती तो अटकती हैं, सहस्रों वर्ष का प्रयत्न भी एक पग आगे नहीं बढ़ा सकता । प्रयत्न, धन का खर्च और सैंकड़ों उपायों का फल कुछ भी नहीं निकलता ।

शास्त्र में उदाहरण दिया है, लोग कुत्तों से शशक

का आखेट करते हैं। जिनको दुष्ट व्यसन पड़ गए हैं वे हिरनों के पीछे कभी भेड़िया लगा देते हैं। हिरनों का एक यूथ है, भेड़िये उस पर पड़ते हैं, दूसरा भेड़िया गढ़ा खोद कर छिप कर अन्दर बैठ जाता है, कोई हिरन उस ओर आया जहां भेड़िया छिप कर बैठा है, हिरन व्याकुल हुआ हुआ कुछ नहीं जानता अब उसको अधिक शोक दुःख और पश्चात्ताप होता है—व्याकुल होता है। यदि भागने का प्रयत्न करे और अपनी बुद्धि को स्थिर रखे तो दोनों से बच सकता है, परन्तु घबरा कर कूदता ऊपर को है और फिर नहीं गिरता है जहां से कूदा था घण्टा भर प्रयत्न तो किया परन्तु अज्ञानता से मारा गया।

इसी प्रकार संसार की जातियां जब अज्ञान से चेष्टा करती हैं तो सहस्रों वर्ष के प्रयत्न निष्फल होजाते हैं।

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में बताया था कि "जब भाई भाई से लड़े, वैमनस्य हो जाए तो वहां नाश होने के सिवाय और क्या आशा है" दुःख है तो यह कि जिन्होंने प्रेम सिखलाना था उनके विचारों में एकता नहीं है। हम में ऐसे वृद्ध नहीं देख पड़ते जो इस उलझन को खोल दें, यह निराशा है।

स्वामी जी कहते हैं, कि महाभारत में दुर्योधन के दुष्टभाव से परस्पर युद्ध हुआ और भारतदेश में

वैरभाव फैला और आज तक चला आता है। पता नहीं इसका पीछा छोड़ेगा अथवा रसातल को पहुंचा देगा।

फिर यदि आर्य्यसमाज में अनैक्य की ज्वाला बढ़ती है, तो फिर शेष क्या रहा। इस वैर को ही तो उठाना था शेष कौनसी वस्तु यहां नहीं थी, परंतु स्वयं वैर में पड़ गए। यह है निराशा की वात और सब आशा ही है।

अड़तालीस वर्षों में आर्य्यसमाज के प्रचार से ऋषि दयानन्द के विचारों ने संसार में तो पलटा दे दिया। जिन ईसाई और मुसलमानों की यह आशा पड़ती कि एक शताब्दि में हिन्दूजाति को हम अपने अन्दर बांट लेंगे आज वे घर के अन्दर विचार करते हैं कि आर्यसमाज हमको छोड़ेगा या नहीं।

अब देखना यह है कि हमारी भूल कहां पर है। केवल एक शब्द को भलीभान्ति समझो तो सब पता लग जाएगा।

देखो, एक " यज्ञ " शब्द आता है। यहां यज्ञ परमात्मा का वाचक है, दूसरे स्थल पर पुरुष के साथ मिले हुए आत्मा का नाम यज्ञ है, तीसरे स्थान पर यज्ञ शब्द शुभकर्मों का वाचक है। एक और वेद मंत्र में यज्ञ शब्द आया है जहां पुरुष के सुधार का वाचक है। फिर पितृयज्ञ देवयज्ञ में कर्म का वाचक कहा है।

प्रेम किनका होता है, जिनके गुण और स्वभाव समान हों, यदि आप अपने आपको यज्ञ बना लो तो आत्मिकबल बढ़ जाता है, फिर जो करो वही होगा।

बलवान् आत्मा बलवान् शरीर को चाहता है, आप अपने आपको यज्ञ बनाने का यत्न करो, फिर आप उस यज्ञस्वरूप परमात्मा से मिल जाओगे।

वेदमन्त्र कहता है "आंख को यज्ञ बनाओ" एक कवि ने कहा है कि "हे भगवन्! दूसरे के अपवाद करने से—दूसरे की निन्दा करने से मुख में दोष आ जाता है, नेत्र परस्त्री पर कुदृष्टि डालने से दूषित हो जाता है और चित्त दूसरे की हानि सोचने से दूषित होगया, मार्ग सब बिगड़ गए, फिर मनुष्य यज्ञ कैसे बना। परमात्मा से इस प्रकार भेंट नहीं हो सकती। आंख से देख कर कैसे दोष उत्पन्न होते हैं? एक जन्तु आपके सामने से जाता है, एक मनुष्य उसे देख कर सोचता है कि परमात्मा की सृष्टि में कैसे सुन्दर जन्तु हैं। दूसरा सोचता है कि इसका मांस बड़ा स्वादिष्ट है। भाव दोनों के भिन्न भिन्न हैं और इसी से कार्य्यों में भूल होजाती है। मनु जी कहते हैं, जब मनुष्य का भाव अच्छा नहीं तो चाहे वेद पढ़ लो, यज्ञ कर लो, सब दूषित हैं। यदि भाव में सच्चाई है तो सब कुछ ठीक है।

आज से कुछ दिन पहले तोप बन्दूक चलती थी

अन्न नहीं, यह भी चित्त के भाव की बात है इसी लिए कहा है कि " मन को यज्ञ बनाओ "

फिर कहा है कि यज्ञ को यज्ञरूप बनाओ अर्थात् अच्छे कर्म्मों को भी यज्ञ बनाओ। ज़िला बदायूं में एक नकलनवीस रिश्वत लेता था उसने आर्य्यसमाज के सत्संग से घूस लेना छोड़ दिया। परन्तु उसने किया क्या कि काम करने वालों से बोलता ही नहीं। उसके अन्दर अभिमान आगया कि मैं घूस नहीं लेता। 'निकाला तो कुत्ते को और बांध लिया गधे को' उचित तो यह था कि बोलता और घूस लेने वालों की न्याई, और घूस न लेता। इस प्रकार करता तो संसार को अच्छा आदर्श देता। इसलिए कहा है कि भले कर्म्मों से जो बड़ाई होती है उसे भी निष्काम और ईश्वर अर्पण कर दो।

अपने आपको यज्ञ बनाओ। इसीलिए सन्ध्या करने का समय रखा हुआ था। कई कहते हैं कि प्रातःकाल पूर्व और सायंकाल में पश्चिम की ओर मुख क्यों करें। स्मरण रहे कि आपको श्रद्धा रखनी चाहिए। भूमि में बोया बीज और प्रातःकाल ही जाकर देखा कि उगा है व नहीं। डाक्टर ने फोड़े पर पट्टी बांधी, आपने घर जाकर खोली और देखने लगे कि पका है व नहीं, क्या ऐसे पकेगा।

श्रद्धा का तन्तु मृत्यु से अभय कर देता है, बलवान् बना देता है, इसलिए आप सायं प्रातः अपने आपको यज्ञ बनाने का यत्न करो । यह दोनों काल विचार के लिए रखे हुए थे । सूर्य्य की ओर क्यों बैठें, संकेत से बतलाया है कि हे मनुष्यो ! तुम विद्या और प्रकाश की ओर खड़े रहो । यदि प्रकाश की ओर पीठ दे दी तो छाया सामने होगी, तुम्हारे सामने प्रकाश नहीं प्रत्युत अन्धकार होगा । सायंकाल फिर सूर्य्य की ओर ही मुख करो । और बतलाओ तो सही, जब कभी कोई मित्र आता है तो उसकी अगवानी के लिए उसकी ओर मुख करते हो अथवा पीठ देते हो । ऐसे ही जब गाड़ी आती है तो सब उसकी ओर ही देखते हैं और जब जाती है तो भी लोग उसी की ओर देखते हैं । फिर सायंकाल और प्रातःकाल ही सन्ध्या क्यों ?

देखो, इसको समझोः—

जो प्रश्न कहीं सिद्ध नहीं होता वह अलजबरा की समानता की श्रेणी में सिद्ध होजाता है । इसी प्रकार सांझ और सवेरा समानता की श्रेणी के समय हैं । किसी के स्वत्व का हनन न करना समानता है । एक मनुष्य को घोड़े ने पड़ाव पर पहुंचा दिया, अब सवार का कर्त्तव्य है कि अपने खाने पीने का प्रबन्ध पीछे करे पहले घोड़े के चारे का करे यह है, समानता ।

संसार से वैर विरोध हट जाएंगे यदि आपके मन में समानता का भाव आजाएगा। उपानिषद् में लिखा है कि मनुष्य के शरीर में दो शक्तियां हैं, रयी और प्राण। दिन के समय प्राण की शक्ति बढ़ती है, रात्रि को रयी बढ़ती है। जैसे रयी की शक्ति रात्रि को बढ़ती बढ़ती प्रातःकाल हुआ तो प्रातःकाल को रयी और प्राण की शक्ति सम होजाती है, वैसे ही सायंकाल को दोनों शक्तियों के सम होजाने से जो सोचो, सोच लोगे। परन्तु सोचे कौन, उस समय तो उठता ही कोई नहीं।

आप की कभी समवृत्ति तो होती ही नहीं। जो जहाज़ चलते हैं उनका नियम है, वहां एक कम्पास होता है उसकी सूई हिला दो वह फिर भी ध्रुव की ओर हो जाएगी। उसके बनाने वाले ने चाहे कोई नियम रखा है, परन्तु योग के जानने वाले कहते हैं, कि जितने तारे हैं सब चलायमान हैं और ध्रुव के गिर्द घूमते हैं और वह खड़ा रहता है इसलिए कम्पास की सूई इस ओर ही ठहरती है॥

चित्त की वृत्ति भी सुई है। यह किधर ठहरे? जो स्थिर स्वभाव परमात्मा है, जब उधर जाएगी तो ठहर जाएगी। जगत् के पदार्थ तो चलायमान हैं, वहां ठहर नहीं सकती और इसके ठहराने का समय वही था जिससे पुरुषार्थ और उत्साह बढ़ जाता है। एक माता की ओर

आंख उठाने से बुरा भाव उत्पन्न होगया तो क्या समझते हो कोई विकार न लाएगा, अवश्य लाएगा। चित्त के स्थिर और समान न रहने से भारी कुकर्म होते हैं। इसी लिए कणाद ऋषि ने नियम बतलाया है कि अविद्या मनुष्य से सब प्रकार के पाप करवाती है, और यह इन्द्रियों के मार्ग से संग दोष से आती है॥

इन्द्रियों को वश में लाना कठिन है और सब काम सुगम हैं। एक कमान्डरन्चीफ़ सेना को जीत कर आया और एक कन्या के रूप को देख कर मोहित होगया। वह कन्या आर्य्या थी कहती है, हे सेनापति! वह तेरी तलवार का बल जिससे तू सैंकड़ों को काटता था, वह तेरा ओजस्वीपन तो मेरे एक कटाक्ष के देखने से नष्ट होगया, तनक सोच तो सही। एक मनुष्य हस्ति के दन्त को उखाड़ने, सिंह को मारने, सर्पों को हाथों से मार देने में समर्थ है, परन्तु इन्द्रियों के वश करने में असमर्थ होता है। तू कहता है कि तूने लाखों को जीता है और मैं कहती हूं कि मैंने तुझको जीता है। कमान की बुद्धि ठिकाने आगई। मनुष्य है, जो मनुष्य के काम करे॥

एक फ़ारसी का कवि कहता है:—

"एक तरफ़ से देखूं तो करोड़ों आदमी नज़र आते हैं लेकिन दूसरी तरफ़ से देखूं तो कोई भी नहीं॥"

मनुष्य वह है जिसने अपने आत्मा का बल बढ़ाया है, जैसे महर्षि महानुभाव दयानन्द थे, बल देखो तो पूरा, विद्वान् तो पूर्ण, संसार के सुधारों को देखो तो पूर्ण, जितेन्द्रियता में पूर्ण ॥

मनुष्य अपने आप को सब कुछ बना सकता है । एक ऋषि के पास मांडसक राजा ने कहा, भगवन् ! मेरी कन्या विवाह के योग्य हुई है । ऋषि ने कहा, पुरुष से विवाह करो । राजा कहता है, यह आपने क्या कहा है, पुरुषों के साथ ही तो विवाह होता है ॥

ऋषि ने कहा, " संसार में सब पुरुष नहीं, पुरुष के चित्र हैं " ।

देखो, यदि अपने आप को बना लो तो अच्छा है अन्यथा यह तो न करो कि बने हुए कार्य को बिगाड़ते चले जाओ । जिसको बना नहीं सकते हो उसको बिगाड़ो तो नहीं ॥

कवि कहता है:—" प्रातःकाल का वायु पुष्पके संमुख जाते हुए लजाता है क्योंकि उसकी पंखड़ियों को खोल कर सुगन्धि को तो फैला दिया परन्तु पंखड़ियों को इकट्ठा नहीं कर सकता और सुगन्धि वापस नहीं ला सकता ॥

अब तो आपकी निद्रा खुल चुकी है और बेसुधी नहीं है आपने स्वयमेव सिद्ध कर दिया कि हमारे पुरखा बहुत बड़े थे ॥

...न ७७ गया, ऐसे ही
य शब्द का ठीक न समझ सकने से हम विगड़ गए।
पितृयज्ञ के अनर्थ से आपाधापी पड़ गई। स्वामीजी
महाराज सच्चे साधु ने रोग का यत्न बता दिया, सब
कुछ बतला दिया प्रत्येक काम क्रम-वेक बता दिया,
कौनसी बात है जो उन्होंने बतला हो, परन्तु आप
हैं कि उस पर चलते नहीं। अनुष्ठान के विना कुछ लाभ
नहीं होता।

प्रमाद न करो दुःख उठाओगे। समय अच्छा है, साधन अच्छे हैं, अपने आपको जितेन्द्रिय बनाओ। इन्द्रियों को वश में कर लेने से मनुष्य की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। मनुजी ने कहा है कि जितेन्द्रिय बनने का विचार करो, इन्द्रियों को वश में करो। विषयों के जाल में न फंसो। यदि यज्ञ शब्द को सोचना और बनाना चाहते हैं तो इन्द्रियों के प्रत्येक मार्ग को ठीक करके उन्हें वश में लेआओ। जितना मनुष्य वीर्य्यवान् होगा उतना ही सुन्दर होगा और रोग रहित होगा, सन्तान भी बलवान् होगी इसलिए अपने आपको वश में रखो। यदि नहीं रखते तो कवि का वाक्य सुनो, जो कहता है—
"पहले पापों का फल पा रहे हो फिर भी मूर्खता के वश में होकर उन्हीं पापों के गम्भीर जल में जाते हो और अपनी ग्रीवा पर मन भर की शिला बांध रहे हो"

व्याख्यान केवल सुनने के लिए नहीं, उपदेश जीवन में लाने के लिए होते हैं। सिंह के समान भारत सन्तान, इस देश में दूध की नहरें, धन धान्य का घाटा नहीं। अंगूर खाने को, ताजे मक्खन, शुद्ध वायु, सुन्दर जल, इस देश के लोगों की यह दशा हो जाए, जैसे गर्मी का मारा हुआ आम होता है। "हे परमात्मन्! हमें बल दो और हमारे विचार शुद्ध हों" उल्टे विचारों का फल उल्टा हो रहा है इस से बचाओ॥

यत्न और उद्यम करोगे तो सब कुछ मिलेगा। क़वि ने कहा है:—

रञ्ज से सब कुछ मिले बिन रञ्ज कुछ मिलता नहीं।
ग़ोता जनको ग़ोता बिन मोती नहीं मिलता कहीं॥

संसार यात्रा ।

संसार में जिस प्रकार जो यात्री मार्ग पर चलता हुआ अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर मुंह किए हुए है, वह जितने पग सीधे उठाता है उतना ही वह अपने उद्दिष्ट स्थान के निकटतर होता जाता है यह बात स्वयं सिद्ध है, इसी प्रकार यह बात भी निर्विवाद है कि यदि उस यात्री का पग अपने उद्दिष्ट स्थान की ओर जाने के स्थान उल्टा पड़ जाए, तो वह जितने पग उठाएगा उतना ही उद्दिष्ट स्थान से दूर होता जाएगा । ठीक यही अवस्था संसार यात्रा में जीव-आत्मा की है । मनुष्य के लिए प्राप्त करने के योग्य स्थान परमश्वर है अथवा उसके सुख, जिस प्रकार एक यात्री अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुंचने का यत्न करता है । उसी प्रकार एक जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है; प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा है । परन्तु इन सब प्रयत्न और इच्छाओं के होते हुए भी परमेश्वर की प्राप्ति में असमर्थ रहता है । उसे सुख प्राप्त नहीं होता, इसका कारण क्या है ? कारण यह है कि हम परमेश्वर की प्राप्ति का जो मार्ग है उससे उल्टे जा रहे हैं, ठीक मार्ग से दूर जा रहे हैं, यही कारण है कि परमेश्वर और सुख की प्राप्ति के हमारे सम्पूर्ण प्रयत्न निष्फल जारहे हैं । जितना हम सुख की

प्राप्ति का यत्न करते हैं उतना ही वह दूर भागता है, और भागे क्यों न, सुख के पास तो हम जब पहुंचे जब सुख की ओर हमारा मुंह हो। जब मुख उसके विपरीत होगा तो फिर वही होगा कि—

सर्वे प्रयत्ना शिथिला भवन्ति ।

सारे प्रयत्न निष्फल होंगे और एक समय हम इस अवस्था को देखेंगे कि हम सुख और परमेश्वर से बहुत ही दूर हो गए हैं। उस समय हमारी अवस्था उस मरणासन्न मनुष्य की सी होगी जो भूमि पर लेट रहा है और लोग आ आकर उसे पूछते हैं कि क्यों पण्डित महात्मा जी आप हमें पहचानते हैं कि मैं कौन हूं। जब वह नहीं बोलता तो उसके पाओं को हाथ लगाते हैं, नाड़ी देखते हैं । जब गति सर्वथा बंद हो जाती है तो कहते हैं अब नहीं पहचानता, अब नहीं सुन सकता । ठीक ऐसी ही अवस्था जीवात्मा की परमेश्वर के मार्ग से उल्टा चलने पर हो जाती है। जिस प्रकार देखने की शक्ति मन के साथ मिल कर पहचानने का काम करती थी, जिनसे उसका सम्बन्ध टूट जाने से देखने की शक्ति काम नहीं करती तथा श्रवण शक्ति नष्ट हो जाती है।

मृत्यु के समय मनुष्य में चेतनता आ जाती है। जीवात्मा शरीर को छोड़ने के समय ऐसा क्यों करता

है। आपने देखा होगा कि जब कभी कोई बड़ा मनुष्य कलक्टर व छोटा लाट साहब किसी स्थान से प्रस्थान करते हैं तो सहसा ही नहीं चल देते वरंच एक दो दिन तैय्यारियां करते हैं पहले बाहर जाकर तम्बू लगाते हैं, मिलने वाले आकर उनसे मिल लेते हैं। सब आवश्यक वस्तुएं तम्बू में एकत्र की जाती है, तब प्रस्थान आरम्भ होता है। इसी प्रकार जब जीवात्मा इस शरीर को छोड़ता है तो वह सम्पूर्ण शक्तियों को एकत्र करता है। कृष्ण भगवान् कहते हैं कि मृत्यु के समय अन्तःकरण जैसी भावनाओं को देखता है जैसे विचारों को देखता है उन्हींसे प्रभावित होता हुआ उसी ओर को रुख कर लेता है। आप दुकान पर बैठे हैं, आपके मन में भावना उत्पन्न हुई कि भवन में जाकर लैक्चर उपदेश सुनें, आप दुकान से उठ कर भवन में आगए। इसी प्रकार दूसरे मनुष्य के मन में विचार हुआ कि रावी पर चलें और वह रावी की ओर चल पड़ा। जिस प्रकार जीवित पुरुप अपनी भावनाओं से प्रेरित होता हुआ सब काम करता है ठीक उसी प्रकार की क्रिया मृत्यु के समय होती हैं। जैसे विचार व भावनाएं उसके अन्तःकरण में उत्पन्न होती हैं उनसे प्रभावित हुआ २ उधर ही चला जाता है।

यह मृत्यु का समय हमारे साथ भी सम्बन्ध रखता है। हम संसार में सदा रहने के लिए नहीं आए, हमको भी कभी इस संसार से विदा होना होगा। इसके पश्चात् हमारा उद्दिष्ट स्थान क्या है, यदि इस बात का हमको पता नहीं अथवा पता लगाने का हम यत्न नहीं करते तो हमारे समान भूला हुआ और कोई नहीं है। यदि किसी यात्री से पूछा जाए कि कहां जाते हो, वह उत्तर दे मुझे पता नहीं, इस अन्धाधुन्ध का भी कहीं ठिकाना है भला? ऐसे यात्री को आप क्या कहेंगे, यही कहेंगे कि वह एक उन्मत्त मनुष्य है।

परमेश्वर हमारा उद्दिष्ट स्थान है। उसकी ओर जाने के लिए आवश्यक है कि हम उन बातों को न करें जो कि परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध हैं। यही ऋषि लोगों का नियम है, जिसने परमेश्वर को प्राप्त किया उसे 'ऋषि' कहते हैं।

ऋषि, मनुष्य और राक्षस।

ऋषि, मनुष्य और राक्षस में केवल इसी ज्ञान का अन्तर है अन्यथा ऋषि के शरीर पर मोहर नहीं लगी होती, मनुष्य के सिर पर सींग नहीं होते और राक्षस के हाथों पर कोई पहचान का चिन्ह नहीं लगा होता। केवल गुणों के भेद से ही मनुष्यों के यह तीन भेद कहे हैं। 'ऋषि' उसको कहते हैं जो स्वार्थ से रहित होकर

केवल सर्वसाधारण के हित के लिए ही काम करे, जिसको अपना प्रयोजन कुछ भी न हो, उसका पुरुपार्थ केवल लोगों की भलाई के लिए हो । 'मनुष्य' वह है जिसमें लोगों की भलाई के साथ अपना स्वार्थ भी हो । जिसके हृदय में इस नियम की धारणा हो कि मैं मनुष्य समुदाय में रह आप भी सुखी रहूं और लोगों को भी सुख पहुंचाऊं । न उनसे मुझको कोई दुःख पहुंचे और न मुझसे उनको, मेरा भी बने उनका भी बने । 'राक्षस' वह है जो अपना ही भला सोचें, दूसरों की हानि व लाभ का कोई विचार न हो । अब इन तीनों में से जो केवल लोगों की भलाई का विचार है वह सर्वोत्कृष्ट आदर्श है, परन्तु ऐसा होना कठिन है । यह विचार कि न अपना बिगड़े न दूसरे का, मध्यम विचार है जोकि उपरोक्त बात से सुगम है इससे आगे तीसरा नम्बर स्वार्थ में गिना गया है और आजकल यह मात्रा ही बढ़ी हुई है । "मेरा रस्सा जाओ तो जाओ परन्तु दूसरे की भैंस अवश्य मरे," यह भाव बड़ा सुगम है क्योंकि जिस प्रकार मनुष्य के चारों ओर वायु मण्डल छा रहा है । उसी प्रकार चारों ओर यह बुराई का केन्द्र विद्यमान है । बुराई के लिए कोई तैय्यारी की आवश्यकता नहीं है, इसीलिए तो परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि—

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः।

कान सुनने के लिए एक साधन हैं, जो बहरा है वह सुन नहीं सकता। यह एक नियम है कि जैसे को तैसा देख पड़ता है, यह कुछ तो ठीक है और कुछ नहीं ठीक। दुष्ट जन को तो सारे दुष्ट ही दिखाई पड़ते हैं परन्तु यह ठीक नहीं कि भले सबको भले देख पड़ें। जिस प्रकार जब मैं बहरे से बात करने लगता हूं, तो बहरा ज़ोर से बोलने लगता है, इसलिए कि उसको ऊंचा सुन पड़ता है, दूसरों को भी ऊंचा सुन पड़ता होगा। इसलिए बुरे मनुष्य के विचार में तो आ जाता है कि सब बुरे हैं। भला मनुष्य भले को भला और बुरे को बुरा समझता है इसलिए वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमेश्वर! हम कानों से सदैव कल्याणों को ही सुनें, नेत्रों से सदा कल्याण को देखें, हे परमेश्वर! हमारे सब अंग दृढ़ रहें जिससे कि हम इस जगत् में भी सुखी रहें और परलोक में भी सुख पाएं। जब वेदमंत्र का ऐसा उपदेश है तो हमें जान पड़ता है कि इस प्रकार का सदाचारी बनने पर परमात्मा और सुख की प्राप्ति का एक मार्ग तो मिलता है। अब सोचो कि वह मार्ग कौनसा है?

मन के साथ समस्त इन्द्रियों का सम्बन्ध है। यह सब मन के आधीन हैं, मन की उपस्थिति में यह सब

काम करती हैं और अनुपस्थिति में क्रियाशून्य रहती हैं। मन के संयोग न होने पर न कान सुन सकता है न आंख देख सकती है। आप बाज़ार में किसी विचार में लीन हुए घूम रहे हैं, पीछे से आपको किसी ने बुलाया परन्तु आपने नहीं सुना क्योंकि आप का मन दूसरी ओर था। मन के बिना कोई इन्द्रिय काम नहीं करती। मन और इन्द्रियों के लिए मनुष्य बड़े कठिन से कठिन कर्म्म कर सकता है इसलिए मन को शुभकर्म्मों में डालना तो उद्दिष्ट स्थान की ओर जाना है और उसे कुकर्म्मों में लगा देना अपने लक्ष्य से विपरीत चलना है। इस संसार में कोई दुःखी और कोई सुखी देख पड़ता है, तो क्या संसार में अन्याय हो रहा है। परमात्मा किसी को भी दुःख नहीं देते वे तो सब को सुख ही देते हैं। परन्तु जिस प्रकार सूर्य्य का काम तो प्रकाश उष्णता देने का है, एक पौदे पर तो उसके प्रकाश और उष्णता का यह प्रभाव पड़ता है कि वह सूख जाता है और दूसरा हरा भरा हो जाता है तो क्या इस में सूर्य्य का दोष है, कदापि नहीं, परंच जिस पौदे की जड़ में जल और नमी है वह फूलता है और जिसका सूखा है वह प्रकाश और उष्णता को अनुकूल न पाकर सूख जाता है। इसी प्रकार जो मन से भलाई की ओर जाता है जिस अन्तःकरण में भलाई का बीज विद्यमान है,

जो सच्चाई से प्रेम रखता है, वह संसार में सुख प्राप्त करता है, और जिस में बुराई और कपट भरा है वह उसी व्यवस्था के अनुसार दुःख उठाता चला जाता है।

आप फ़ारसी की पुस्तकों को पढ़ें, अंग्रेज़ी और संस्कृत के ग्रन्थ देखें, सब एक मत होकर किस बात का वर्णन करते हैं, सबका उद्देश्य एक ही है कि:—

"बुरे कर्म्मों से हटे रहो"

सब शास्त्रों की यही मर्य्यादा है, परन्तु संसार की दशा आजकल क्या है, दुःख से तो बचना चाहते हैं परन्तु दुःख के कारण को छोड़ना नहीं चाहते। सुख की प्राप्ति तो चाहते हैं परन्तु सुख के कारण को प्राप्त नहीं करते। कर्म तो करते हैं दुःख प्राप्ति के, परन्तु चाहते हैं सुख ' यह कैसे होगा ? इसलिए जो मनुष्य बुरे कर्म्मों से हट जाता है वही सुख पा सकता है, और दूसरों के भी कल्याण का हेतु होता है। क्योंकि वह मनुष्य जिस सोसाइटी में रहता है और जो वस्तु उसके पास होगी वही बांटेगा। यदि बुराई उसके पास होगी तो वह सोसाइटी में बुराई फैलाएगा और यदि भलाई है तो भलाई फैलाएगा। यह भी नहीं हो सकता कि वह दूसरों के साथ बुराई करे और उनसे आशा भलाई की रखे। लुकमान से उसके स्वामी ने कहा कि गेहूं खेत में बो दो, उसने जाकर बाज़रा बो दिया। स्वामी ने कहा कि बाज़रा बो कर गेहूं कैसे उगेंगे तो लुकमान ने

उत्तर दिया, श्रीमान् ! यदि बाजरे के बीज से गेहूं नहीं उत्पन्न हो सकते तो आप बुराई का बीज बो कर भलाई की आशा कैसे रखते हैं। आप के मन में अथवा मेरे मन में यह विचार आ सकता है कि हम तो कोई बुराई नहीं करते, यह क्यों ? इसलिए कि मुझे अपना दोष प्रतीत नहीं होता। सच्चे मार्ग पर आने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी बुराइयों को जाने, अन्यथा छोटी २ बुराइयों का भी लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आर्य्य-समाज में झगड़ा है, राय ठाकुरदत्त प्रधान पद को नहीं छोड़ते। मुरादाबाद में "वर्णव्यवस्था गुण कर्म स्वभाव से है व जन्म से" इस विषय पर शास्त्रार्थ था। सनातनी पण्डित ने कहा कि ब्राह्मण पद की डिगरी हमारे पिता पुरुषों की सहस्रों वर्षों की मिली हुई है आप हमसे सहस्रों वर्षों की मिली हुई डिगरी को छुड़ाना चाहते हैं, परन्तु आप दो वर्ष की मिली हुई प्रधानी को नहीं छोड़ते तो हम ब्राह्मण पद को कैसे छोड़ दें। देखो, यह निर्बलता हमारे अन्दर है जिसका प्रभाव दूसरों पर पड़ता है, जगत् ने इस पर हमारा पक्षपात नहीं किया।

इसलिए हे मनुष्य ! तू अपने दोषों पर दृष्टि डाल। निर्बलता को समझने की प्रकृति डाल, यह धार्मिक ग्रन्थों का उपदेश है। परन्तु हम अपनी दुर्बलता को

ही वल समझ बैठे हैं । दुर्बलता भारतवर्ष की प्रकृति में मिल गई है । ज्यों ज्यों भारतवर्ष दुर्बल होता जाता है त्यों त्यों ही दुबलापन एक फ़ैशन बनता चला जाता है, यदि हम दुर्बलता को अपना भूषण समझ लेंगे तो हम उसको क्यों कर छोड़ सकते हैं ।

जिस समय इस वर्तमान जगत् को परमेश्वर ने बना कर सच्चाई और झूठ में अन्तर डाल दिया तो तुमको उचित है कि सत्य से प्रेम और झूठ से घृणा करो। अब जो मनुष्य इसके विरुद्ध करेगा वह अपने मार्ग में स्वयं संकट उत्पन्न करेगा । मनुष्य को सत्य से इस प्रकार प्रेम करना चाहिए जिस प्रकार कि ऋषि दयानन्द करते थे । सभा लगी हुई है, ऋषि के मुंह से एक अशुद्ध शब्द निकल गया । एक छोटा सा बालक उठ कर कहता है, महाराज ! यह शब्द ऐसा नहीं है । ऋषि स्वीकार कर लेते हैं कि वास्तव में यह शब्द मेरे मुख से अशुद्ध निकल गया था । यदि ऋषि चाहते तो उस अशुद्ध को भी शुद्ध कर सकते थे, परन्तु सत्य के प्रेमी ऋषि ने ऐसा करना उचित न समझा क्योंकि ऋषि जानते थे कि यदि झूठा हठ आगया तो अन्तःकरण पर झूठ की छाया पड़ जाएगी, इस अपनी थोड़ी सी मानहानि पर सत्य के साथ घृणा क्यों करूं । सत्य के साथ प्रेम रखने के कारण वह तो ऋषि बन गए,

परन्तु दूसरी ओर अनुभूतिस्वरूप आचार्य्य वृद्ध थे, बुढ़ापे के कारण उनके मुख से पुंक्षु शब्द के स्थान में पुंशु निकल गया। लोगों ने कहा कि यह तो अशुद्ध शब्द है, बस इस पर वह मान प्रतिष्ठा के कारण हठ पर आगए और पूरे तीन मास गृह से नहीं निकले। अन्त में एक ऐसा ग्रन्थ बनाया जिसमें पुंशु शब्द को ठीक सिद्ध किया परन्तु वह भी अशुद्ध सिद्ध हुआ, परन्तु उसका मन तो अभिमान और हठ के कारण मलीन हुआ। इसलिए मनुष्य को सर्वदा अपने मन को शुद्ध रखना चाहिए और सत्य के साथ प्रेम रखना चाहिए। बुरे कर्म्मों से बचने के लिए ३ वस्तुओं की आवश्यकता है

मन में विमलता, जीवन में सरलता और शरीर में सफलता।

यदि आपके शरीर में बल, मन साफ़, जीवन पवित्र सरल और सादा है तो आप सच्चे हैं यदि आपका जीवन पवित्र नहीं है, मन भ्रष्ट और शरीर बलवान् नहीं है तो आप बुरे कर्म्मों से नहीं बच सकते हैं। परन्तु वह तब हो सकता है जब आप वेदों के उपदेश पर चलें। वेद का उपदेश है:—

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन—इत्यादि। हे मनुष्य! तू अपने शरीर को यज्ञ बना दे, अपने यज्ञ को यज्ञ बना दे। अर्थात् पुरुषार्थ

से अपने कर्ण नेत्र आदि इन्द्रियों को कार्य्यरूप में परिणत कर, केवल शिक्षा पाने से ही काम न चलेगा।

स्वामीजी महाराज लिखते हैं, "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है" उसके पश्चात् उसकी व्याख्या करते हैं कि शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। ऋषि ने सब से पहला नम्बर शारीरिक उन्नति को दिया है, क्योंकि जिसका शरीर दुर्बल है वह संसार का क्या अपना भी उपकार नहीं कर सकता और बलवान उसे दबा लेते हैं। जिनके आत्मा बलवान और शरीर पुष्ट हों वे ही ऐसे कष्ट के समय नेकी और सदाचार का निदर्शन दूसरों के संमुख रख सकते हैं और इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य सब प्रकार की विषयवासनाओं से बचे। जो मनुष्य विषयवासनाओं में लगा रहता है वह कभी हृष्ट पुष्ट और बलवान आत्मा नहीं हो सकता।

अकड़ ऐंठ अभिमान में, गए हजारों वर्ष।
आओ प्रिय मिल बैठिए, जो बढ़े हृदय में हर्ष॥

आओ! जुदाई और द्वेष के सिर खाक डालो। मेल मिलाप में आनन्द हो जाएगा, भुजाओं में बल आ जाएगा, शरीर में शक्ति आ जाएगी। यही मार्ग है सुख और शान्ति का, भावी सन्तान को बिगड़ने न दो, प्रेम और प्रीति बढ़ाओ, परमात्मा तुम्हारा कल्याण करेगा।

———:०:———

ऋषि का संदेश।

संसार में वैदिक धर्म का प्रचार करना आर्यसमाज का असली काम है और ऋषि का यही संदेश है। जिस कदर यह काम अपने में गौरव रखता है और महान् है उसके लिए उतना ही प्रयत्न आवश्यक है। ऋषि के विचार में जिस कदर इसका विस्तार होगा उसी कदर संसार का सुधार और उपकार होगा, जितना वैदिक असूलों का प्रकाश होगा उतना ही अविद्या, अन्धकार, भ्रम और भूल का नाश होगा, जितनी वेदों की विद्या मनुष्य समाज में बढ़ती जाएगी उतनी ही स्वार्थ की बीमारी जो संसार के दुःख का कारण बन रही है घटती जाएगा; वैदिक सिद्धान्तों का जिस कदर संमान होगा उसी कदर प्राणीमात्र का मंगल और कल्याण होगा। वेदों की मर्यादा का जिस मनुष्य समाज में जितना मान होगा वह उतना ही प्रेम प्रीति से युक्त और परस्पर व्यर्थ राग द्वेष से मुक्त होकर बलवान और बुद्धिमान् होगा; वैदिक धर्म को जितने अंश में जिस मनुष्य समाज ने ठीक २ पाला होगा उतना ही उसका बल, बुद्धि और ऐश्वर्य निराला होगा, वेदों के अनुकूल गुण कर्म और स्वभाव से वर्णा-श्रमव्यवस्था जितनी मात्रा में स्थिर होगी उतने ही पुरुषों में बुरे कर्मों से अप्रीति और शुभ कर्मों में

प्रीति होने से ईश्वरभक्ति दृढ़ होगी। संक्षेप से वैदिक धर्म का अनुष्ठान ही मौलिक सुख और मोक्ष प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

यह आर्य्यसमाज का पूर्ण निश्चय है।

यही तो कारण है कि आर्य्यसमाज वैदिक धर्म के प्रचार करने में यथाशक्ति लगातार प्रयत्न करता रहता है और उसका यह भी विश्वास है कि जो उन्नति-आत्मिक हो या सामाजिक-हो चुकी है, हो रही है या होगी उन सब का आधारभूत वैदिक ज्ञान ही है। क्योंकि वह असूल जिसके साथ मनुष्य समाज की उन्नति का सम्बन्ध है सृष्टि के आदिकाल से चला आता है। देखा जाता है कि मनुष्य समाज उन्नति का प्रति क्षण इच्छुक है। उसको अपनी उन्नति तथा बेहतरी से भी प्यार है मगर यह मार्ग पुरुषार्थ से हाथ आ सकता है केवल कहने या इच्छा करने से कोई अर्थ उपलब्ध नहीं होता।

क्या कभी मनुष्य ने इस बात पर विचार किया है कि हम मरना नहीं चाहते मगर क्यों मर जाते हैं? वृद्ध नहीं होना चाहते मगर निर्बलता और वृद्धावस्था आ ही दबाती है। हम सर्वदा धनी रहना चाहते हैं पर ग़रीबी आ ही सताती है। हम सदा आराम चाहते हैं पर दुःख आ ही जाता है; हम सम्बन्धियों का मिलना सदा चाहते हैं पर जुदाई अपने साथ दुःख को लाती और बार २ रुलाती है।

कभी सुना है कि यह काम हमारी इच्छा के विरुद्ध क्यों होते हैं? यह उतार चढ़ाव संसार से अलग तो नहीं हो सकते मगर ऐसी अवस्थाएं उत्पन्न होकर यह प्रकट करती हैं कि मनुष्य को वास्तविकता को परखने वाला होना चाहिए, जो उसको हानि, लाभ, गरीबी और-अमीरी प्रसन्नता और चिन्ता जीवन और मृत्यु के समय में समानभाव से रखे। केवल खाने पीने सोने जागने धन कमाने या भवनों के सामान बनाने में ही जीवन को ढालने से मनुष्य का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता है।

इसी कारण से ही लिखा गया है कि मनुष्य को परखने की बुद्धि होनी चाहिए इसी काम का परिणाम ही सुख है, यह सिद्धान्त स्वयं संसार में प्रकट हो रहे हैं, मनुष्य का इन पर कोई वश नहीं। यह उसी परमात्मा के जिसकी रचना संसार है—जो सब का आधार है—हर एक में रह कर हर एक से न्यारा है—प्रत्येक वस्तु को उसीका सहारा है आधीन है।

सूक्ष्मदर्शिता से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वाभाविक ज्ञान और प्राकृतिक चीजें परस्पर मिल कर एक रूप बन गई हैं। प्राकृतिक ज्ञान ही मनुष्य के मस्तिष्क से होकर निकलता है इसलिए वह 'कर्त्ता' कहलाता है। जैसे मिट्टी ईंटों की शकल में मकान के काम आती, इसीलिए ईंटों से मकान बना हुआ माना जाता है

ऐसा ही प्रत्येक वस्तु को समझ लें। इस ज्ञान के स्रोत का नाम ही तो 'वेद' है। जो सृष्टि के आदिकाल से मनुष्य जाति को, जो स्वयं किसी वस्तु की वास्तविकता को जानने के योग्य न थी, सत्य और असत्य को जानने, और हानि और लाभ के पहचानने के लिए प्रकट हुआ है। और इसका सीधा सम्बन्ध परमात्मा के साथ है।

पश्चात् संस्कारों द्वारा एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे में आने जाने लगता है। इससे प्रकट होता है कि मनुष्य अल्पज्ञ है। इसमें भूल जाने की आदत है, इसी लिए भी उसको समझाने वाले की आवश्यकता है। मगर ऐसा न हो तो उन्नति का विचार होने पर भी गिरावट की तरफ़ ही झुकता है। उलटा ह्रास की तरफ़ ही मुख करता रहता है। यही तो कारण है कि संसार कभी सत्य का उपदेश न होने के कारण आलस्य और प्रमाद में फंस कर उन्नति के मार्ग को भूल कर ह्रास के गहरे गढ़े में गिर जाता है। और फिर कभी सत्य उपदेश को सुन कर उन बुरी बातों को जिन का सम्बन्ध ख़राबी ह्रास-या बरबादी के साथ है अपने बुद्धि व बल से दबा कर उन्नति की तरफ़ चला आता है।

इस उन्नति तथा अवनति के मध्य में संस्कार कार्य करते दृष्टिगोचर होते हैं। अगर उनको अलग कर

लिया जाए तो फिर मनुष्य में उन्नति की योग्यता ही नहीं रहती । यह संस्कार बीजरूप में तो प्रत्येक मनुष्य में उपस्थित हैं मगर उनको जगाने के लिए किसी साधु के उपदेश की आवश्यकता पड़ती है । दृष्टान्त- जैसे दियासलाई में आग तो है मगर उसको प्रकट करने के लिए रगड़ की आवश्यकता है । यह सब को ज्ञात है कि जहां थोड़े ही संकेत से स्वयं इन संस्कारों का उदय हो जाता है वहां इन महानुभावों के अनेक जन्मों के तप का फल होता है । जैसे ऋषि दयानन्दजी महाराज के हृदय में उस छोटी आयु में जिसमें बालकों को खाने पीने-खेल कूद या लिखने-पढ़ने के सिवा दूसरी बात का ध्यान भी नहीं आता, मृत्यु से बचने और ईश्वर प्राप्ति का विचार कैसे उत्पन्न होगया । इतना ही नहीं बल्कि उसके लिए यत्न करना प्रारम्भ कर दिया । अनेक कष्टों के आने पर भी न घबराना और लगातार प्रयत्न करते ही जाना और बीच में आने वाली रुकावटों को बल से हटाना और अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए सदा उत्साह को बढ़ाना और फिर सफल होकर संसार को दिखाना, स्वयं जिस मार्ग पर चल कर आनन्द उठाया था वह सर्वसाधारण को समझाना और अन्तिम समय में मृत्यु के कष्ट को सहते हुए जिस परमात्मा की प्राप्ति के लिए घर को छोड़ा

था उसे दिल से भुलाना और हंसते हुए संसार को छोड़ जाना ऋषि के तपोबल का ही फल नहीं तो और क्या है? मगर प्रत्येक मनुष्य के हृदय में यह संसार इसी रूप में उत्पन्न होजाए तो यह उनका स्वभाव नहीं। जिस तरह कोई पुरुष नींद से स्वयमेव हुशियार और कोई जगाने से खबरदार और कोई बार २ जगाने से भी अज्ञान में फंस जाता है, ठीक यही अवस्था संस्कारों की है। यह दो प्रकार के होते हैं, एक तीव्र दूसरे मन्द। उनके अनेक भेद होने पर भी सामान्य रूप से दो ही भेद हैं। वह मनुष्य समाज जो किसी महानुभाव के उपदेश का अमृत पान करके आलस्य और प्रमाद को नाश कर पूर्णोत्साह से मार्ग में खड़ा हो जाता है, वह भाग्यशाली माना जाता है। ऐसी अवस्था में उन्नति के संस्कार तीव्र होते हैं और जो मनुष्य समाज सत्य उपदेश में रुचि ही नहीं रखता वह उलटी चाल चलन को छोड़ने में गाफ़िल है वह भाग्यहीन मलिन बुद्धि और व्यसनों से पराधीन हैं। वहां उन्नति के संस्कार मन्द हैं। शोक से कहना पड़ता है कि भारतवर्ष इस समय बुरी चाल चलन में फंसा हुआ है-अपने समय को निरर्थक बातों में गंवा रहा है। यही कारण है कि प्रत्येक जद्दोजहद में पड़ कर फ़िसल जाता है।

जो कुछ भी हो मनुष्य समाज को अच्छे उपदेश की तो प्रत्येक समय आवश्यकता है इस सिलसिले को ज़ारी रखने के लिए वेद आदि सत्यशास्त्रों में बलपूर्वक तथा बड़ी ही उत्तमतया आज्ञा दी है । इसके बिना जो मनुष्य स्वयं ही अपने हानि लाभ समझने की योग्यता नहीं रखते हैं उनको समझाने के लिए दूसरा कोई भी उपाय नहीं है केवल उपदेश ही मार्ग दिखा सकता है । समय २ पर जितने साधु महात्माओं का सृष्टि में आगमन हुआ उन्होंने तात्कालिक प्रचलित दोषों को दूर करने का यथाशक्ति यत्न तो किया है । यही तो कारण है कि संसार भर में इन महानुभावों को लोग किसी न किसी रूप में आदर की दृष्टि से याद करते हैं । ऐसा होना भी चाहिए नहीं तो मनुष्य अकृतज्ञता के दोष से दूषित हो जाता है । मगर उन महापुरुषों के प्रचार में भी जिस कदर सुधार का अंश पाया जाता है । उसका सम्बन्ध वेदों से ही है ।

जिसने अपने जीवन में स्वार्थ को छोड़ कर संसार का कुछ भी उपकार किया है उसका मान करना और उसे आदर की दृष्टि से देखना तो ठीक ही है मगर उसको ईश्वर का स्थान देना भारी भूल है । यह मनुष्य पूजा ही हर प्रकार की ख़राबी का मूल है । इस कारण ही भारतवर्ष में सम्प्रदायों की बहुतायत है । इस से ही

संसार में सर्वत्र झगड़ा और टंटा दिनप्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। यह वैदिक धर्म से विरुद्ध चलने का परिणाम है। वेद एक ईश्वर की पूजा सिखाता है और वही सब का उपास्यदेव है। उसकी आज्ञा पालन करने से मनुष्य समाज सुख और चैन से रहता है और जो इससे विमुख है वही दुःखों के आघात को सहता है। जीवन और मृत्यु को नियम में रखने वाला वही एक स्वामी है वही मोक्ष का भागी है जो उसका ही अनुगामी है। स्थान २ पर वेद पुरुषों के कल्याण के लिए इस बात को प्रकट करता है कि प्रेम और प्रीति से अपने कर्तव्य जान कर शुभकर्मों के करने से अन्तःकरण की शुद्धि और उपासना के करने से निर्मल बुद्धि-ज्ञान से अज्ञान दूर होता है और जिज्ञासु के हृदय में परमात्मा का प्रकाश अवश्य होता है।